॥ ओ३म् ॥

चाणक्य नीति

ले. संग्रहकर्ता
नरोत्तम बालाजी

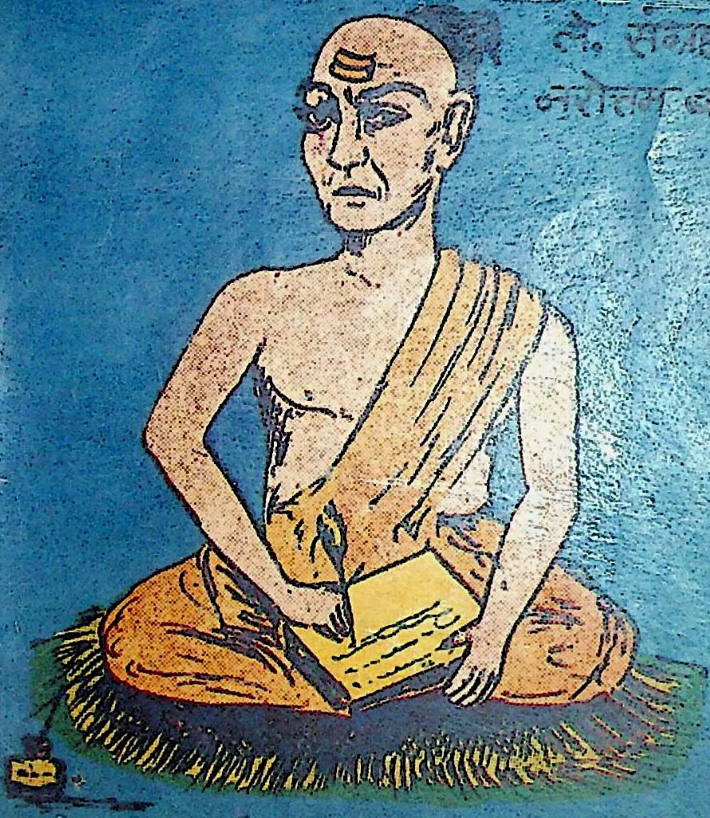

प्रकाशक: आर्ष साहित्य केन्द्र, हालनगंज, कच्ची सड़क
मथुरा

ओ३म्

चाणक्य-नीति

सम्पादक :

नरोत्तम वानप्रस्थी

आर्ष साहित्य केन्द्र

लालगंज, कच्ची सड़क, मथुरा

मूल्य Rs 7 रुपया

मूल्य : 6.00

प्रकाशक : आर्ष साहित्य केन्द्र, हालनगंज, कच्ची सड़क, मथुरा

नवीन संस्करण : १९९३|मुद्रक : बिन्दल प्रेस, हालनगंज, मथुरा-२८१००१

॥ ओ३म् ॥

चाणक्य नीति

अर्थात्

राजनीतिसमुच्चयः

❀ प्रथमोऽध्यायः ❀

प्रणम्य शिरसा विष्णुं
त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम् ।
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये
राजनीतिसमुच्चयम् ॥१॥

भावार्थ—तीनों लोकों के स्वामी, सर्वशक्तिमान् और सर्व व्यापक परमेश्वर को प्रणाम कर मैं अनेक शास्त्रों से उद्धृत करके 'राजनीति समुच्चयः' अर्थात् चाणक्य नीति नामक ग्रन्थ का लेखन-कार्य आरम्भ करता हूँ।

अधीत्येदं यथाशास्त्रं नरो जानाति सत्तमः ।
धर्मोपदेशविख्यातं कार्याऽकार्यं शुभाऽशुभं ।२।

भावार्थ—श्रेष्ठ मनुष्य इस शास्त्र का विधिवत् अध्ययन करके वेदादि शास्त्रों में उपदिष्ट कर्तव्य-अकर्तव्य, पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म को ठीक-ठीक जान जाता है।

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया ।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते ॥३॥

भावार्थ— मैं लोगों के मङ्गल की इच्छा से उस 'राजनीति-समुच्चय:' का वर्णन करूँगा, जिसको जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है।

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च ।
दुःखितैःसम्प्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति।४।

भावार्थ—मूर्ख शिष्य को पढ़ाने से, दुष्ट स्त्री का भरण-पोषण करने से और दुःखीजनों के साथ व्यवहार करने से बुद्धिमान् मनुष्य भी दुःख उठाता है।

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥५॥

भावार्थ—कटुभाषिणी और दुराचारिणी स्त्री; धूर्त स्वभाव वाला मित्र, उत्तर देने वाला नौकर और सर्प वाले घर में रहना ये सब बातें मृत्युस्वरूप ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥६॥

भावार्थ—बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि आपत्तिकाल के लिए धन का संग्रह और उसकी रक्षा करे। धन से भी अधिक पत्नी की रक्षा करनी चाहिए। परन्तु धन और स्त्री से भी अधिक अपनी रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि अपना ही नाश हो जाने पर धन और स्त्री का क्या प्रयोजन ?

आपदर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमतां कुत आपदः।
कदाचिच्चलते लक्ष्मीः संचितोऽपि विनश्यति
॥७॥

भावार्थ—किसी ने किसी धनी से कहा—'आपत्तिकाल के

लिए धन का संग्रह करना चाहिए।" धनी बोला—"श्रीमानों पर आपत्तियाँ कब आती हैं?" वह मनुष्य बोला—"लक्ष्मी चञ्चल है, हो सकता है कभी चली जाए।" धनी बोला—"यदि ऐसी बात है तो संचित की हुई सम्पत्ति भी नष्ट हो जाती है।"

यस्मिन् देशे न सम्मानो
न वृत्तिर्न च बान्धवाः।
न च विद्याऽऽगमः कश्चित्
तं देशं परिवर्जयेत् ॥८॥

भावार्थ—जिस देश में न तो आदर-सम्मान है, न आजीविका प्राप्ति के साधन हैं, न बन्धु-बान्धव हैं और न ही किसी विद्या की प्राप्ति की सम्भावना है, ऐसे देश को छोड़ देना चाहिए, ऐसे स्थान पर नहीं रहना चाहिए।

धनिकः श्रोत्रियो राजा
नदी वैद्यस्तु पञ्चमः।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते
न तत्र दिवसं वसेत् ॥९॥

भावार्थ—जहाँ धनवान्, वेदज्ञ ब्राह्मण, राजा, नदी और वैद्य—ये पाँच विद्यमान न हों, ऐसे देश या स्थान में नहीं रहना चाहिए।

लोकयात्रा भयं लज्जा
दाक्षिण्यं त्यागशीलता।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते
न कुर्यात् तत्र संस्थितिम् ॥१०॥

भावार्थ—जहाँ आजीविका या व्यापार, दण्डभय, लोक-लज्जा, चतुरता और दानशीलता—ये पाँच बातें न हों; ऐसे स्थान पर निवास नहीं करना चाहिए।

जानीयात् प्रेषणे भृत्यान्
बान्धवान् व्यसनाऽऽगमे।
मित्रं चाऽऽपत्तिकालेषु
भार्यां च विभवक्षये ॥११॥

भावार्थ—कार्य में नियुक्त करने पर नौकरों की, दुःख आने पर बान्धवों की, विपत्ति काल में मित्रों की और धन नष्ट होने पर स्त्री की परीक्षा होती है।

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रु-संकटे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥१२

भावार्थ—रोगी होने पर, दुःखी होने पर, अकाल पड़ने पर, शत्रु से सङ्कट उपस्थित होने पर, किसी मुकदमे आदि में फँस जाने पर गवाह एवं सहायक के रूप में राजसभा में और मरने पर जो श्मशान में भी साथ देता है, वही सच्चा बन्धु है।

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिषेवते।
ध्रुवाणितस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च॥१३

भावार्थ—जो मनुष्य निश्चित को छोड़कर अनिश्चित के पीछे भागता है उसका निश्चित कार्य या पदार्थ नष्ट हो जाता है और अनिश्चित तो नष्ट है ही।

वरयेत् कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम्।
रूपवतीं न नीचस्य विवाहः सदृशे कुले ॥१४

भावार्थ—बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न कुरूप कन्या के साथ विवाह कर ले परन्तु नीच कुल में उत्पन्न सुन्दरी कन्या के साथ विवाह न करे, क्योंकि विवाह तुल्य कुल में ही विहित है।

नखीनां च नदीनां च
भृङ्गीणां शस्त्रपाणिनाम्।
विश्वासो नैव कर्तव्यः
स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥१५॥

भावार्थ—नखवाले प्राणियों का, स्रोतों वाली नदियों का, सींगवाले प्राणियों का और शस्त्रधारी लोगों का विश्वास नहीं करना चाहिए। स्त्रियों और राजकुलों पर भी विश्वास न करे।

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम्।
नीचादप्युत्तमाविद्या स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि१६

भावार्थ—विष में से भी अमृत को, अशुद्ध पदार्थों में से सोने को, नीच मनुष्य से उत्तम विद्या को और दुष्टकुल से स्त्रीरत्न को ले लेना चाहिए।

स्त्रीणां द्विगुण आहारो
बुद्धिस्तासां चतुर्गुणा।
साहसं षड्गुणं चैव
कामोऽष्टगुण उच्यते॥१७॥

भावार्थ—पुरुषों से स्त्रियों का आहार दुगुना, बुद्धि चौगुनी, साहस छहगुना और काम आठगुना कहा गया है।

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

❀ अथ द्वितीयोऽध्यायः ❀

अनृतम् साहसं माया
मूर्खत्वमतिलुब्धता ।
अशौचत्वं निर्दयत्वं स्त्रीणां
दोषाः स्वभावजाः ॥१॥

भावार्थ—झूठ बोलना, साहस, छल-कपट, मूर्खता, अत्यन्त लोभ अपवित्रता और निर्दयता—ये स्त्रियों के स्वाभाविक दोष हैं।

भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वराङ्गना ।
विभवोदानशक्तिश्चनाऽल्पश्च तपसः फलं।२।

भावार्थ—भोजन के योग्य पदार्थ और भोजन की शक्ति, सुन्दरी स्त्री और भोगने के लिए कामशक्ति, विपुल धनराशि तथा उसके साथ दान देने की भावना—ऐसे संयोगों का होना थोड़े तप का फल नहीं है अर्थात् महान् तप के फलस्वरूप ही ऐसे संयोग होते हैं।

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दाऽनुगामिनी ।
विभवेयश्च संतुष्टस्तस्य स्वर्ग इहैव हि ॥३॥

भावार्थ—जिसका पुत्र वश में है, स्त्री आज्ञानुसार चलने वाली हैं, धन को जिसके पास न्यूनता नहीं है ऐसे मनुष्य के लिए इसी संसार में स्वर्ग है।

ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः
स पिता यस्तु पोषकः ।

तन्मित्रं यस्य विश्वासः
सा भार्या यत्र निर्वृतिः ॥४॥

भावार्थ—पुत्र वही है जो पिता का भक्त है, पिता वह है जो पुत्रों का पालन-पोषण करता है; मित्र वह है जिस पर विश्वास हो और पत्नी वह है जिससे सुख प्राप्त हो।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखं॥५॥

भावार्थ—जो मुख पर तो चिकनी-चुपड़ी बातें बनाये और पीठ पीछे कार्य को बिगाड़ दे, ऐसे मित्र को त्याग देना चाहिए, क्योंकि वह तो उस घड़े के समान है जिसके ऊपर तो दूध लगा हो और भीतर विष भरा हो।

न विश्वसेत् कुमित्रे च
मित्रे चाऽपि न विश्वसेत्।
कदाचित् कुपितं मित्रम्
सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत् ॥६॥

भावार्थ— कुमित्र पर तो विश्वास करना ही नहीं चाहिए सुमित्र पर भी विश्वास न करे, क्योंकि यदि कभी वह रुष्ट हो गया तो सारे रहस्यों का भण्डा फोड़ देगा।

मनसा चिन्तितं कार्यं
वाचा नैव प्रकाशयेत्।
मन्त्रेण रक्षयेद् गूढं कार्ये
चाऽपि नियोजयेत् ॥७॥

भावार्थ—मनुष्य को चाहिए कि मन के द्वारा विचारे हुए कार्य को वाणी द्वारा प्रकट न करे अपितु मनन-पूर्वक उसकी रक्षा करते हुए चुपके-चुपके उसे कार्य में परिणत कर दे।

कष्टं च खलु मूर्खत्वं कष्टं च खलु यौवनम्
कष्टात्कष्टतरं चैव परगेहनिवासनम् ॥१८॥

भावार्थ—मूर्खता कष्टदायक है, यौवन भी कष्टदायक है, और सबसे अधिक कष्टदायक है—दूसरे के घर में निवास करना।

शैले शैले न माणिक्यं
मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र
चन्दनं न वने वने ॥६॥

भावार्थ—सब पर्वतों पर माणिक्य (लाल या गुलाबी रंग के रत्न) नहीं होते, सब हाथियों के मस्तक में मोती उत्पन्न नहीं होता, सज्जन पुरुष सर्वत्र नहीं मिलते और प्रत्येक वन में चन्दन नहीं होता।

पुत्राश्च विविधैः शीलै-
र्नियोज्याः सततं बुधैः।
नीतिज्ञाः शीलसम्पना
भवन्ति कुलपूजिताः ॥१०॥

भावार्थ—बुद्धिमान् पिता को चाहिए कि अपने पुत्र और पुत्रियों को अनेक प्रकार के शुभगुणों की शिक्षा दे, क्योंकि नीतिज्ञ और शीलवान् व्यक्तियों की ही कुल में पूजा होती है।

माता शत्रुः पिता वैरी
येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये
हंसमध्ये बको यथा ॥११॥

भावार्थ—वे माता और पिता अपने सन्तानों के महाशत्रु हैं, जिन्होंने उनको उत्तम शिक्षा नहीं दिलाई, क्योंकि वे विद्याहीन बालक विद्वानों की सभा में ऐसे ही तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं, जैसे–हंसों के मध्य में बगुला ।

लालनाद् बहवो दोषा-
स्ताडनाद् बहवो गुणाः ।
तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च
ताडयेन्न तु लालयेत् ॥१२॥

भावार्थ—लाड़-प्यार से बच्चों में अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं और दण्ड देने से अनेक गुण उत्पन्न होते हैं, अतः पुत्र-पुत्रियों, शिष्य-शिष्याओं का ताड़न करना चाहिए, लाड़ नहीं लड़ाना चाहिए ।

श्लोकेन वा तदर्धेन पादेनैकाक्षरेण वा ।
अबन्ध्यं दिवसं कुर्याद् दानाध्ययनकर्मभिः।१३

भावार्थ—मनुष्य को चाहिए कि प्रतिदिन एक श्लोक (वेदमन्त्र) आधा श्लोक, एक पाद अथवा एक अक्षर का स्वाध्याय करे और दान-अध्ययन आदि शुभ कर्मों को करता हुआ ही दिन को सफल बनाये, दिन को व्यर्थ न गँवाए ।

कान्तावियोगः स्वजनापमानः

ऋणस्य शेषं कुनृपस्य सेवा ।

दरिद्रभावो विषमा सभा च

विनाग्निमेते प्रदहन्ति कायम्।१४।

भावार्थ—कान्ता का विरह, अपने जनों से प्राप्त अनादर, बचा हुआ ऋण, दुष्ट राजा की सेवा, दरिद्रता और मूर्खों की सभा—ये सब अग्नि के बिना ही शरीर को जलाते हैं।

नदीतीरे च ये वृक्षाः

परगेहेषु कामिनी ।

मन्त्रिहीनाश्च राजानः

शीघ्रं नश्यन्त्यसंशयम् ॥१५॥

भावार्थ–नदी के किनारे पर उगे हुए वृक्ष, दूसरे के घर में जाने अथवा रहने वाली स्त्री और मन्त्रियों से रहित राजा—ये सब निश्चय ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

बलं विद्या च विप्राणां राज्ञां सैन्यं बलं तथा ।

वित्तं च वैश्यानां शूद्राणां परिचर्यिका ॥१६॥

भावार्थ—ब्राह्मणों का बल तेज और विद्या है, राजाओं का बल सेना है, वैश्यों का बल धन और पशु-पालन है तथा शूद्रों का बल सेवा है।

निर्धनं पुरुषं वेश्या प्रजा

भग्नं नृपं त्यजेत् ।

खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा

चाऽभ्यागता गृहम् ॥१७॥

भावार्थ—वेश्या निर्धन मनुष्य को, प्रजा पराजित राजा को, पक्षी फलरहित वृक्ष को और अतिथि भोजन करके घर को छोड़ देते हैं।

गृहीत्वा दक्षिणां विप्रास्त्य-
जन्ति यजमानकम्।
प्राप्त विद्या गुरुं शिष्या
दग्धाऽरण्यं मृगास्तथा ॥१८॥

भावार्थ—ब्राह्मण दक्षिणा लेकर यजमान को, शिष्य विद्या प्राप्ति के पश्चात् गुरु को और पशु जले हुए वन को त्याग देते हैं।

दुराचारी च दुरदृष्टिदु राऽऽवासी च दुर्जनः।
यन्मैत्री क्रियतेपुम्भिर्नरःशीघ्रं विनश्यति।१९।

भावार्थ—मनुष्य को चाहिए कि दुराचारी, कुदृष्टि वाले बुरे स्थान में रहने वाले और दुर्जन मनुष्य के साथ मित्रता न करे, क्योंकि इनके साथ मित्रता करने वाला मनुष्य शीघ्र नष्ट हो जाता है।

समाने शोभते प्रीतिः
राज्ञि सेवा च शोभते।
वाणिज्यं व्यवहारेषु दिव्या
स्त्री शोभते गृहे ॥२०॥

भावार्थ—प्रेम बराबर वालों में अच्छा लगता है, सेवा—नौकरी राजाओं की (सरकारी) उत्तम होती है, व्यवसायों में वणिज सर्वोत्तम है और उत्तम गुणवाली स्त्री घर में सुशोभित होती है।

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

❀ अथ तृतीयोऽध्यायः ❀

कस्य दोषः कुले नास्ति
व्याधिना को पीडितः ।
व्यसनं केन न प्राप्तं
कस्य सौख्यं निरन्तरम् ॥१॥

भावार्थ– किसके कुल में दोष नहीं है ? रोग ने किसे नहीं सताया ? आपत्ति और कष्ट किस पर नहीं आये ? सदा सुख किसको रहता है ?

आचारः कुलमाख्याति
देशमाख्याति भाषणम् ।
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति
वपुराख्याति भोजनम् ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य का आचार उसके कुल-शील को बोल-चाल उसके देश को, मान-सम्मान उसके प्रेम को और शरीर का सहनन (गठन) उसके भोजन को प्रकट करते हैं।

सुकुले योजयेत्कन्यां पुत्रं
विद्यासु योजयेत् ।
व्यसने योजयेच्छत्रुं मित्रं
धर्मे नियोजयेत् ॥३॥

भावार्थ—कन्या को श्रेष्ठ कुल में देना चाहिए, पुत्र को विद्याभ्यास में लगाना चाहिए, शत्रु को आपत्ति और कष्टों में डालना चाहिए तथा मित्र को धर्म कार्यों में नियुक्त करना चाहिए।

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः।
सर्पो दंशति कालेज दुर्जनस्तु पदे पदे ॥४॥

भावार्थ—दुर्जन और सर्प—इन दोनों में सर्प अच्छा है, दुर्जन नहीं, क्योंकि साँप तो काल आने पर ही काटता है परन्तु दुर्जन तो पद-पद पर हानि पहुँचाता है।

एतदर्थं कुलीनानां नृपाः कुर्वन्ति संग्रहम्।
आदिमध्याऽवसानेषुनत्यजन्ति च ते नृपम्।५।

भावार्थ—राजा लोग अपने पास कुलीन लोगों का संग्रह इसलिए करते हैं कि वे उन्नति और अवनति, उत्कर्ष और विपत्ति, जय और पराजय—किसी भी अवस्था में राजा को नहीं छोड़ते।

प्रलये भिन्नमर्यादा भवन्ति किल सागराः।
सागरा भेदमिच्छन्ति प्रलयेऽपि न साधवः।६।

भावार्थ—प्रलय के समय समुद्र अपनी मर्यादा को त्याग देते हैं और किनारों को छोड़ देते हैं अथवा तोड़ देते हैं परन्तु सज्जन पुरुष प्रलय के समान भयंकर आपत्ति और विपत्ति आने पर भी अपनी मर्यादा नहीं छोड़ते।

मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः।
भिनत्ति वाक्शल्येन अदृष्टः कण्टको यथा।७।

भावार्थ—मूर्ख से दूर रहना, उसे त्याग देना ही उचित

है, क्योंकि वह प्रत्यक्षरूप में दो पैरों वाला पशु है। वह वचन रूपी बाणों से मनुष्य को ऐसे ही बींधता है, जैसे अदृश्य काँटा शरीर में घुसकर शरीर को बींधता रहता है।

रूपयौवन सम्पन्नः विशालकुलसम्भवाः।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुका;
॥८॥

भावार्थ—रूप और यौवन से सम्पन्न तथा ऊँचे कुल में जन्म लेने पर भी विद्या विहीन मनुष्य ऐसे ही सुशोभित नहीं होता, जैसे गन्धरहित ढाक के फूल।

कोकिलानां स्वरो रूपं
स्त्रीणां रूपम् पतिव्रतम्।
विद्या रूपम् कुरूपाणां
क्षमा रूपम् तपस्विनाम्॥९॥

भावार्थ—कोयलों का रूप स्वर, स्त्रियों का सौन्दर्य पतिव्रत धर्म, कुरूपों का रुप विद्या और तपस्वियों की शोभा क्षमाशीलता है।

त्यजेदेकं कुलस्याऽर्थे
ग्रामस्ताऽर्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्याऽर्थे
आत्माऽर्थे पृथिवीं त्यजेत्॥१०॥

भावार्थ—मनुष्य को चाहिए कि कुल की रक्षा के लिए एक पुरुष को त्याग दे, ग्राम की उन्नति के लिए कुल का बलिदान कर दे, जनपद की श्री बृद्धि के लिए गाँव को तिलांजलि

दे दे और अपनी आत्मा की उन्नति के लिए सारी पृथिवी को त्याग दे।

उद्योगे नास्ति दारिद्र्यम्

जपतो नास्ति पातकम्।

मौने च कलहो नास्ति

नास्ति जागरिते भयम्।११।

भावार्थ—पुरुषार्थी के पास दरिद्रता नहीं फटकती, जप करने वाले के पास पाप नहीं रहता, मौन रहने पर लड़ाई-झगड़ा नहीं होता और जागने वाले को भय नहीं होता।

अतिरूपेण वै सीता

अतिगर्वेण रावणः।

अतिदानं बलिर्दत्वा

अति सर्वत्र वर्जयेत्।१२।

भावार्थ—अत्यधिक सुन्दरता के कारण सीता का हरण हुआ, अत्यन्त गर्व के कारण रावण मारा गया, बहुत अधिक दान देने के कारण राजा बलि को बन्धन में बँधना पड़ा—इन सब दृष्टांतों को देखकर सर्वत्र 'अति' को छोड़ देना चाहिए।

को हि भारः समर्थानां किं

दूरं व्यवसायिनाम्।

को विदेशः सविद्यानां कः

परः प्रियवादिनाम्।१३।

भावार्थ—शक्तिशालियों के लिए कौन-सा काम कठिन है? कोई भी नहीं। व्यापारियों के लिए कौन-सा स्थान दूर है?

कोई-सा भी नहीं। विद्वानों के लिए विदेश कौन-सा है? कोई भी नहीं। मधुरभाषियों के लिए पराया कौन है? कोई भी नहीं, सभी उसके अपने हो जाते हैं।

एकेनाऽपि सुवृक्षेण
पुष्पितेन सुगन्धिना।
वासितं तद्वनं सर्वं
सुपुत्रेण कुलं तथा ।१४।

भावार्थ—जैसे पुष्पयुक्त और गन्ध से भरपूर एक ही वृक्ष से सारा वन महक उठता है, वैसे ही एक ही गुणी पुत्र सारे कुल को चार चाँद लगा देता है।

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना।
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं तथा ।१५।

भावार्थ—जैसे अग्नि से जलते हुए एक ही सूखे वृक्ष से वह सारा वन, जिसमें वह वृक्ष होता है, जल जाता है; वैसे ही एक ही कुपुत्र से सारे कुल का गौरव, मान और प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती है।

एकेनाऽपि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना।
आह्लादितं कुलं सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी।१

भावार्थ—विद्वान और सदाचारी एक ही पुत्र से सारा परिवार ऐसे ही आनन्दित हो जाता है, जैसे चन्द्रमा के निकलने पर रात्रि प्रकाशमान हो जाती है।

किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः
शोकसन्तापकारकैः।

वरमेकः कुलाऽऽलम्बी यत्र
विश्राम्यते कुलम् ।१७।

भावार्थ—शोकदायक और हृदय को जलाने वाले अनेक पुत्रों के उत्पन्न होने से क्या लाभ ? कुल को सहारा देने वाला एक ही पुत्र उत्तम है, जिसके आश्रय में सारा परिवार सुख भोगता है ।

लालयेत् पञ्च वर्षाणि
दश वर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे
पुत्रं मित्रवदाचरेत् ।१८।

भावार्थ—पाँच वर्ष तक पुत्र के साथ प्यार और दुलार करना चाहिए तत्पश्चात् दस वर्ष तक ताड़ना करनी चाहिए और सोलहवां वर्ष आरम्भ होते ही पुत्र के साथ मित्र जैसा व्यवहार करना चाहिए ।

उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे
च भयावहे ।
असाधुजनसम्पर्के यः
पलायेत् स जीवति ।१९।

भावार्थ—उपद्रव उठने पर, शत्रु द्वारा आक्रमण होने पर, भयङ्कर दुर्भिक्ष में और दुष्टों का संग होने पर जो भागता है, वही जीवित रहता है ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां
यस्यैकोऽपि न विद्यते ।

जन्म-जन्मनि मर्त्येषु
मरणं तस्य केवलम् ।२०।

भावार्थ—जिस मनुष्य ने अपने जीवन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पुरुषार्थों में से एक भी प्राप्त नहीं किया, उसे मनुष्य योनि में बारम्बार जन्म लेकर बार-बार मरने का ही लाभ प्राप्त होता है।

मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते
धान्यं यत्र सुसञ्चितम्।
दम्पत्योः कलहो नाऽस्ति
तत्र श्रीः स्वयमागता ।२१।

भावार्थ—जहाँ मूर्खों की पूजा नहीं होती, जहाँ अन्न, धान्य विपुल मात्रा में संचित रहते हैं, जहाँ पति-पत्नी में लड़ाई झगड़ा नहीं होता, वहाँ श्री—लक्ष्मी बिना बुलाये स्वयं आकर निवास करती है।

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

❀ अथ चतुर्थोऽध्यायः ❀

आयुः कर्म च वित्तम् च
विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते
गर्भस्थस्यैव देहिनः ।१।

भावार्थ—जीव जब गर्भ में होता है, उसी समय उसकी आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँच बातें निश्चित हो जाती हैं।

साधुभ्यस्ते निवर्तन्ते पुत्रा
मित्राणि बान्धवाः।
ये च तैः सह गन्तारस्तद्ध-
र्मात्सुकृतं कुलम् ।२।

भावार्थ—पुत्र, मित्र और बन्धुगण साधुओं से विमुख रहते हैं परन्तु जो लोग साधुओं के अनुकूल चलते हैं, उनके उस पुण्य से उनका सम्पूर्ण कुल कृतकृत्य हो जाता है।

दर्शनध्यानसंस्पर्शैर्मत्सी
कूर्मी च पक्षिणी।
शिशुम् पालयते नित्यं
तथा सज्जनसंगतिः ।३।

भावार्थ—जैसे मछली दर्शन से, कछवी ध्यान से और पक्षिणी स्पर्श से अपने-अपने बच्चों का सदा पालन-पोषण करती है, ऐसे ही श्रेष्ठ पुरुषों की संगति मनुष्यों का पालन-पोषण करती है।

यावत्स्वस्थो ह्ययं देहो
यावन्मृत्युश्च दूरतः।
तावदात्महितं कुर्यात्
प्राणन्ते किं करिष्यति।४।

भावार्थ—जब तक शरीर नीरोग है और मृत्यु दूर है, तभी तक अपने आत्मकल्याण का उपाय कर लेना चाहिए, क्योंकि मृत्यु हो जाने पर कोई कुछ नहीं कर सकता।

कामधेनुगुणा विद्या ह्यकाले फलदायिनी।
प्रवासे मातृसदृशी विद्या गुप्तं धनं स्मृतम्।५।

भावार्थ—विद्या में कामधेनु के समान गुण हैं, यह असमय में भी फल देनेवाली है, यह विदेश में माता के समान रक्षक और हितकारिणी होती है, इसलिए विद्या को गुप्त—छिपा हुआ धन कहा गया है।

वरमेको गुणी पुत्रो
निर्गुणैश्च शतैरपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न
च तारा: सहस्रशः।६।

भावार्थ—सैकड़ों गुणहीन पुत्रों की अपेक्षा एक भी गुणवान् पुत्र श्रेष्ठ है, क्योंकि चन्द्रमा ही अन्धकार का नाश करता है, हजारों तारे नहीं।

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि
तस्माज्जातमृतो वरः।
मृतः स चाऽल्पदुःखाय
यावज्जीवं जडो दहेत् ।७।

भावार्थ— दीर्घायु वाले मूर्ख पुत्र की अपेक्षा उत्पन्न होते ही मर जाने वाला पुत्र श्रेष्ठ है, क्योंकि मरा हुआ तो थोड़े ही समय के लिए दुःखदायक होता है, परन्तु मूर्ख जब तक जीता है, जब तक जलाता रहता है।

कुग्रामवासः कुलहीनसेवा
कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या।
पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या
विनाऽग्निना षट् प्रदहन्ति कायं।८।

भावार्थ—कुग्राम में निवास, कुलहीन की सेवा, कुभोजन क्रोधमुखी पत्नी, मूर्खपुत्र और विधवा कन्या—ये छह बिना अग्नि के ही जलाते हैं।

किं तया क्रियते धेन्वा या
न दोग्ध्री न च गुर्विणी।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न
विद्वान् न भक्तिमान् ।९।

भावार्थ—उस गौ से क्या लाभ जो न तो दूध देती हो और न गर्भ धारण करती हो? ठीक इसी प्रकार उस पुत्र से क्या लाभ जो न तो विद्वान् हो न ही ईश्वर भक्त हो?

संसारतापदग्धानां त्रयो विश्रान्तिहेतवः।
अपत्यं च कलत्रं च सतां संगतिरेव च॥१०॥

भावार्थ—संसार के त्रिविध तापों से तप्त (जलते) हुए मनुष्यों के लिए शान्ति-प्राप्ति के तीन ही साधन हैं—पुत्र, पत्नी और सज्जनों की संगति।

सकृज्जल्पन्ति राजानः
सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः।
सकृत् कन्याः प्रदीयन्ते
त्रीण्येतानि सकृत्सकृत्॥११॥

भावार्थ—राजा लोग एक बार ही आज्ञा देते हैं, पण्डित गण एक ही बार बोलते हैं अर्थात अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहते हैं और कन्यादान भी एक ही बार किया जाता है—ये तीनों बातें एक-एक बार ही होती हैं, बार-बार नहीं।

एकाकिना तपो द्वाभ्यां
पठनं गायनं त्रिभिः।
चतुर्भिर्गमनम् क्षेत्रम्
पञ्चभिर्बहुभी रणः॥१२॥

भावार्थ—अकेले से तप, दो से अध्ययन, तीन से गाना चार से यात्रा; पाँच से खेती और बहुतों से युद्ध भली-भाँति बनता है।

सा भार्या या शुचिर्दक्षा सा
भार्या या पतिव्रता।
सा भार्या या पतिप्रीता सा
भार्या सत्यवादिनी॥१३॥

भावार्थ—वस्तुत: वही भार्या—पत्नी है जो पवित्र और चतुर है, जो पतिव्रता है, जो पति से अनुराग रखने वाली है और जो सत्य बोलती है। ऐसी स्त्री ही मान-सम्मान, पालन और पोषण करने योग्य होती है।

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः
शून्यास्त्वबान्धवाः।
मूर्खस्य हृदयं शून्यं
सर्वशून्या दरिद्रता ।१४।

भावार्थ—पुत्रहीन मनुष्य का घर सूना है, बन्धुओं से हीन मनुष्य के लिए दसों दिशायें सूनीं हैं, मूर्ख मनुष्य का हृदय सूना होता है और दरिद्र के लिए तो सब-कुछ सूना होता है।

अनभ्यासे विषं शास्त्रम-
जीर्णे भोजनम् विषम्।
दरिद्रस्य विषं गोष्ठी
वृद्धस्य तरुणी विषम् ।।१५।

भावार्थ—बिना अभ्यास के शास्त्र विष है (बिना अभ्यास के उनका अर्थ और संगति नहीं लगाई जा सकती), अजीर्ण में भोजन करना विष के समान है। दरिद्र के लिए सभा विष के समान है (सभा में दरिद्र को कोई नहीं पूछता) और वृद्धपुरुष के लिए युवती स्त्री विष के समान है।

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्या-
हीनं गुरुम् त्यजेत्।
त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्यां निः-

स्नेहान् बान्धवाँस्त्यजेत् ।१६।

भावार्थ—मनुष्य को चाहिए कि वह दयारहित धर्म को विद्याहीन गुरु को, क्रोधमुखी पत्नी को और स्नेहरहित बन्धु-बान्धवों को त्याग दे ।

अध्वा जरा मनुष्याणां
वाजिनां बन्धनं जरा ।
अमैथुनं जरा स्त्रीणां
वस्त्राणामातपो जरा ।१७।

भावार्थ—मनुष्य के लिए अधिक पैदल चलना, घोड़ों को बाँधकर रखना, स्त्रियों के लिए असम्भोग (मैथुन न करना) और वस्त्रों के लिए धूप जरा (बुढ़ापा) लाने के कारण है ।

कः कालः कानि मित्राणि को
देशः कौ व्ययाऽऽगमौ ।
कश्चाऽहं का च मे शक्ति-
रिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ।१८।

भावार्थ—कौन-सा समय है, मेरे मित्र कौन हैं (शत्रु कौन है), कौन-सा देश है, मेरी आय और व्यय क्या है ? मैं कौन हूँ, मेरी शक्ति क्या है ?—इन सब बातों पर बारम्बार चिन्तन और मनन करना चाहिए ।

जनिता चोपनेता च
यस्तु विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता
पञ्चैते पितरः स्मृताः ।१९।

भावार्थ—जन्म देनेवाला पिता, उपनयन-संस्कार करानेवाला गुरु, विद्या देनेवाला, अन्नदाता और भय से रक्षा करनेवाला—ये पाँच 'पितर' माने गये हैं।

राजपत्नी गुरोः पत्नी
मित्रपत्नी तथैव च।
पत्नीमाता स्वमाता च
पञ्चैता मातरः स्मृताः।२०।

भावार्थ—राजा की पत्नी, गुरु की स्त्री, मित्र की पत्नी पत्नी की माता—सास और अपनी जननी—ये पाँच माताए मानी गई हैं। इनके साथ मातृवत् व्यवहार करना चाहिए।

अग्निर्देवो द्विजातीनां
मुनीनां हृदि दैवतम्।
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां
सर्वत्र समदर्शिनः।२१।

भावार्थ—द्विजों का देव अग्निहोत्र है, मुनियों का देवता उनके हृदय में निवास करता है। मूर्खों के लिए प्रतिमा में देवता होता है और समदर्शी के लिए सब स्थानों में देव—परमेश्वर होता है।

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

❀ अथ पञ्चमोऽध्यायः ❀

गुरुरग्निर्द्विजातीनां
वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
पतिरेव गुरुः स्त्रीणां
सर्वस्याऽभ्यागतो गुरुः ।१।

भावार्थ –द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लिए अग्नि —अग्नि-होत्र गुरु के समान आदरणीय हैं। चारों वर्णों केलिए ब्राह्मण पूजनीय है। स्त्रियों के लिए पति ही गुरु के समान समादरणीय और सम्माननीय है। अतिथि सभी के लिए पूज्य और सत्कार करने योग्य है।

यथा चतुर्भिः कनकम् परीक्ष्यते
निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ।२।

भावार्थ—जैसे सोने के खरे और खोटेपन को जानने के लिए उसकी घिसने, काटने, तपाने और कूटने से परीक्षा की जाती है, वैसे ही मनुष्य की परीक्षा भी दान, शील, गुण और आचरण से होती है।

तावद् भयेषु भेतव्यं
यावद्भयमनागतम् ।

आगतं तु भयं दृष्ट्वा

प्रहर्तव्यमशङ्कया ।३।

भावार्थ—आपत्तियों और संकटों से तभी तक डरना चाहिए जब तक वे दूर हैं परन्तु जब भय और संकट सिर पर आ पड़े तब शंका-रहित होकर उनपर प्रहार करना चाहिए, उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

एकोदरसमुद्भूता

एकनक्षत्रजातका: ।

न भवन्ति समा: शीले

यथा बदरकण्टका: ।४।

भावार्थ—एक ही माता-पिता से और एक नक्षत्र में जन्मे हुए सब बालक गुण-कर्म-स्वभाव में समान नहीं होते, जैसे—बेर और उसके काँटे समान नहीं होते।

नि:स्पृहो नाऽधिकारी

स्यान्नाकामी मण्डनप्रिय: ।

नाऽविदग्ध: प्रियम् ब्रूयात्

स्फुटवक्ता न वञ्चक: ।५।

भावार्थ—१. अधिकारी लोभी होता है, शृंगार प्रेमी कामुक होता है, चातुर्यहीन मधुरभाषी नहीं हो सकता है और स्पष्ट कहने वाला धोखेबाज नहीं होता।

२. आकांक्षाशून्य अधिकारी नहीं बनना चाहता वासना शून्य मनुष्य शृंगारप्रिय नहीं होता, मूर्ख मनुष्य प्रिय नहीं बोल सकता और स्पष्ट कहने वाला ठग नहीं होता।

मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या
अधनानां महाधनाः
वाराऽऽङ्गनाः कुलस्त्रीणां
सुभगानां च दुर्भगाः ।६।

भावार्थ—मूर्ख विद्वानों से द्वेष करते हैं, दरिद्र लोग धनिकों से शत्रुता रखते हैं, वेश्यायें कुलीन स्त्रियों से द्वेष करती हैं और विधवायें सुहागिन नारियों से द्वेष करती हैं।

आलस्योपहता विद्या
परहस्तगताः स्त्रियः ।
अल्पबीजं हतं क्षेत्रं
हतं सैन्यमनायकम् ।७।

भावार्थ—आलस्य से विद्या नष्ट हो जाती है, दूसरे के पास गई हुई स्त्री नष्ट हो जाती है, बीज की कमी से खेत नष्ट हो जाता है और सेनापति से रहित सेना मारी जाती है।

अभ्यासाद्धार्यते विद्या
कुलं शीलेन धार्यते ।
गुणेन ज्ञायते त्वार्यः
कोपो नेत्रेण गम्यते ।८।

भावार्थ—विद्या की प्राप्ति निरन्तर अभ्यास से होती है कुल की स्थिरता, कुल का यश और गौरव उत्तम गुण-कर्म और स्वभावों से फैलता है। आर्य की पहिचान श्रेष्ठ गुणों से होती है और क्रोध का ज्ञान नेत्रों से हो जाता है।

वित्तं न रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृदुना रक्ष्यते भूपः सत्स्त्रिया रक्ष्यते गृहं ।८।

भावार्थ– धन से धर्म की, योग से विद्या की, कोमलता और मधुरता से राजा की तथा सती द्वारा घर की रक्षा होती है ।

अन्यथा वेदपाण्डित्यं शास्त्रमाचारमन्यथा ।
अन्यथा कुवचः शांतलोकाःक्लिश्यंतिचान्यथा

भावार्थ—वेद के पाडित्य की निन्दा करने वाले, शास्त्र और उसके श्रेष्ठाचार को व्यर्थ बताने वाले शान्तपुरुष को ढोंगी और पाखण्डी कहने वाले व्यर्था ही दुःख पाते हैं अर्थात् उन वस्तुओं और मनुष्यों की निन्दा करने से उन्हें कोई लाभ नहीं होता ।

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम् ।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी।११

भावार्थ—दान से दरिद्रता का नाश होता है, सुशीलता कष्टों को दूर करती है, बुद्धि अज्ञान को नष्ट करती है, और ईश्वर भक्ति से भय नष्ट होता है ।

नाऽस्ति कामसमो व्याधिर्नाऽस्ति मोहसमो रिपुः । नाऽस्ति कोपसमो वह्निर्नाऽस्ति ज्ञानात् परम् सुखम् ।१२।

भावार्थ—काम के समान कोई रोग, मोह के समान कोई शत्रु और क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं है तथा ज्ञान से बढ़कर संसार में कोई सुख नहीं है ।

जन्ममृत्यु हिं यात्येको भुनक्त्येकः शुभाऽशुभम् । नरकेषु पतत्येक एको याति परां गतिम् ।१३।

भावार्थ—मनुष्य अकेला ही आवागमन=जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसता है, अकेला ही पाप-पुण्य का फल भोगता है, अकेला ही नाना प्रकार के कष्टों को भोगता है और अकेला ही मोक्ष पाता है। माता-पिता, भाई-बन्धु, नाते और रिश्तेदार कोई भी उसके दुःख-सुख को बाँट नहीं सकते।

तृणं ब्रह्मविदः स्वर्गस्तृणं शूरस्य जीवितम् ।
जिताऽक्षस्य तृणं नारी निःस्पृहस्यतृणंजगत्।१४

भावार्थ—ब्रह्मज्ञानी के लिए स्वर्ग, शूरवीर के लिए जीवन, जितेन्द्रिय (जिसने इन्द्रियों को वश में कर लिया है) के लिए स्त्री और निर्लोभी के लिए संसार तिनके के समान तुच्छ है।

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्यौषधं मित्रंधर्मोमित्रं मृतस्य च।१५

भावार्थ—विदेशों में विद्या मनुष्य का सच्चा मित्र होती है। घर में शील-गुण-युक्त नारी मनुष्य की वास्तविक मित्र होती है। रोगी के लिए औषध मित्र होती है और मरे हुए मनुष्य का मित्र उसका धर्म (धर्मानुष्ठान) होता है।

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम् ।
वृथादानंधनाढ्येषु वृथादीपोदिवाऽपि च ।१६

भावार्थ—समुद्रों में वर्षा, भोजन से तृप्त हुओं को भोजन कराना, धनिकों को दान देना और दिन में दीपक जलाना—ये सभी कार्य व्यर्थ हैं, निष्फल और निष्प्रयोजन हैं।

नाऽस्ति मेघसमं तोयं नाऽस्ति चात्मसमं बलं। नाऽस्ति चक्षु:समं तेजो नाऽस्ति धान्य समं प्रियम् ॥१७॥

भावार्थ—मेघजल के समान दूसरा कोई जल शुद्ध नहीं होता, आत्मबल के समान दूसरा कोई बल नहीं होता अर्थात् आत्मबल शरीर और इन्द्रियों के बल से बढ़कर है। नेत्र के समान दूसरी कोई ज्योति नहीं है तथा अन्न के समान दूसरा कोई प्रिय पदार्थ नहीं है।

अधना धर्नमिच्छन्ति वाचं चैव चतुष्पदाः। मानवा:स्वर्गमिच्छन्तिमोक्षमिच्छन्ति देवताः ॥१८॥

भावार्थ—निर्धन धन चाहते हैं, पशु वाणी चाहते हैं, मनुष्य स्वर्ग की और देवता मुक्ति की कामना करते हैं।

सत्येन धार्यते पृथिवी सत्येन तपते रविः। सत्येन वाति वायुश्चसर्वंसत्ये प्रतिष्ठतं ॥१९

भावार्थ—सत्य के आधार पर पृथिवी टिकी हुई है, सूर्य सत्य के प्रताप से ही तपता है, सत्य के बल से ही वायु चलता है और सब-कुछ सत्य में स्थिर है।

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चलं जीवित-यौवनम्। चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥२०॥

भावार्थ-इस चराचर जगत् में लक्ष्मी, प्राण, यौवन और जीवन सभी कुछ नाशवान् है, केवल एक धर्म ही निश्चल है।

नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणां चैव वायसः। चतुष्पदां शृगालस्तु स्त्रीणां धूर्ता च मालिनी ॥२१॥

भावार्थ—मनुष्यों में नाई, पक्षियों में कौआ, चौपाओं में सियार और स्त्रियों में मालिन चालाक होते हैं।

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

❁ अथ षष्ठोऽध्यायः ❁

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्। श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्ष मवाप्नुयात् ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य वेदादि शास्त्रों के श्रवण से धर्म के मर्म को जानता है, सुनकर खोटी बुद्धि को छोड़ देता है, सुनकर ज्ञान प्राप्त करता है और शस्त्र तथा गुरु-वाक्यों को सुनकर संसार के बन्धनों से छूटकर मोक्ष प्राप्त करता है।

पक्षिणां काकश्चाण्डालःपशूनां चैव कुक्कुरः। मुनीनां कोपी चाण्डालः सर्वेषां चैव निंदकः।२

भावार्थ—पक्षियों में कौआ, पशुओं में कुत्ता, मुनियों में क्रोधी चाण्डाल होता है और सबकी निन्दा करने वाला मनुष्यों में चाण्डाल होता है।

भस्मना शुध्यते कांश्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ।
रजसा शुध्यते नारी नदी वेगेन शुध्यति ॥३

भावार्थ—कांसे का पात्र राख से माँजने से, ताँबे का पात्र खटाई से रगड़ने से शुद्ध होता है। स्त्री रजस्वला होने से पवित्र होती है और नदी तीव्र गति से बहने से निर्मल हो जाती है।

भ्रमन् सम्पूज्यते राजा भ्रमन् सम्पूज्यते द्विजः। भ्रमन् सम्पूज्यते योगी स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति ॥४॥

भावार्थ—भ्रमण करने वाला राजा, ब्राह्मण और योगी सर्वत्र आदर पाता है परन्तु भ्रमण करने वाली नारी भ्रष्ट हो जाती है।

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः ।
सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥५

भावार्थ—जैसी होनहार होती है, मनुष्य की बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है, उसे जैसे ही उपाय=साधन और सहायक भी मिल जाते हैं।

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥६

भावार्थ—काल सब प्राणियों को खा जाता है, काल ही सबका संहार=नाश करता है, सबके सो जाने पर भी काल जागता रहता है, सचमुच काल बड़ा बलवान है, काल को कोई लाँघ नहीं सकता।

न पश्यति च जन्मान्धः कामान्धो नैव पश्य-

ति। न पश्यति मदोन्मत्तो ह्यर्थी दोषान् न पश्यति ॥७॥

भावार्थ—जन्म के अन्धे को दिखाई नहीं देता, कामान्ध को भी कुछ नहीं दीखता, शराब आदि के कारण उन्मत्तको भी कुछ नहीं सूझता और स्वार्थी अपने काम को सिद्ध करने की धुन में किसी काम में दोष नहीं देखता।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते ॥८॥

भावार्थ—जीव स्वयं ही कर्म करता है, स्वयं ही उन कर्मों का फल सुख-दुःख भोगता है। जीव स्वयं संसार में विभिन्न योनियों में जन्म लेता है और स्वयं पुरुषार्थ करके संसार बन्धन से छूटकर मुक्त हो जाता है।

राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः।
भर्ताचस्त्रीकृतंपापं शिष्यपापंगुरुस्तथा ॥९॥

भावार्थ—राष्ट्र में किये हुए पापों को राजा, राजा के पापों को पुरोहित, पत्नि के पापों को पति और शिष्य के पापों को गुरू भोगता है।

विमर्श—यह श्लोक आठवें श्लोक से बिरुद्ध होने के कारण प्रक्षिप्त है। आठवें श्लोक में स्पष्ट कहा है—'जीव स्वयं कर्म करता है और स्वयं ही उसका फल भोगता है।'

ऋणकर्तापिताशत्रुःमाता च व्यभिचारिणी।
भार्या रूपवती शत्रुःपुत्रः शत्रुरपण्डितः ॥१०॥

भावार्थ—ऋण लेनेवाला पिता, व्यभिचारिणी माता रूपवती स्त्री और मूर्ख पुत्र—ये सब सत्रु के समान होते हैं।

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् स्तब्धमञ्जलिकर्मणा।

मूर्खं छन्दोऽनुवृत्तेन यथार्थत्वेन पण्डितम्॥११॥

भावार्थ—लोभी को धन से, व्यभिचारी को हाथ जोड़कर मूर्ख को उसकी इच्छा के अनुसार कार्य करके और विद्वान को सत्य बात बता कर वश में करना चाहिए।

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम्। वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्यो वरं न दारा न कुदारदाराः ॥१२॥

भावार्थ—दुष्ट राजा के राज्य की अपेक्षा राज्य का न होना उत्तम है, इसी प्रकार धोखेबाज मित्र बनाने की अपेक्षा मित्र का न होना उत्तम है, कुशिष्य को शिष्य बनाने की अपेक्षा शिष्य का न होना श्रेष्ठ है और दुष्ट स्त्री को पत्नी बनाने की अपेक्षा पत्नी का न होना अच्छा है।

कुराजराज्येन कुतः प्रजासुखं कुमित्रमित्रेण कुतोऽस्तिनिर्वृत्तिः। कुदारदारैश्च कुतो गृहे रतिः कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः॥१३॥

भावार्थ—दुष्ट राजा के राज्य में प्रजा को सुख मिलना असम्भव है। धोखेबाज मित्र की मित्रता से आनन्द, दुष्ट स्त्री को पत्नी बनाने से घर में प्रीति और खोटे शिष्य को पढ़ाने वाले को यश की प्राप्ति होना असम्भव है।

सिंहादेकं बकादेकं शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात्। वायसात्पंचशिक्षेच्च षट्शुनस्त्रीणि गर्दभात्॥

भावार्थ—मनुष्य को सिंह और बगुले से एक-एक, मुर्गे से चार, कौए से पाँच, कुत्ते से छह और गधे से तीन गुण सीखने चाहिए।

प्रभूतं कार्यमल्पं वा यन्नरः कर्तुमिच्छति ।
सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेकं प्रचक्षते ॥१५

भावार्थ—मनुष्य जो भी बड़ा या छोटा कार्य करना चाहे, उसे पूर्ण शक्ति लगाकर करे, यह शिक्षा सिंह से लेनी चाहिए।

इन्द्रियाणि च संयम्य बकवत् पण्डितो नरः ।
देशकालबलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत्।१६

भावार्थ—बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि अपनी इन्द्रियों को बश में और चित्त को एकाग्र करके तथा देश, काल और बल को जानकर बगुले के समान अपने सारे कार्यों को सिद्ध करे।

प्रत्युत्थानं च युद्धं च संविभागं च बन्धुषु ।
स्वयमाक्रम्य भुक्तं च शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात् ॥१७॥

भावार्थ—यथासमय जागना, युद्ध के लिए उद्यत रहना, बन्धुओं को उनका हिस्सा देना और आक्रमण करके भोजन करना—इन चार बातों को मुर्गे से सीखना चाहिए।

गूढं च मैथुनं धाष्ट्र्यं काले काले च संग्रहम् ।
अप्रमत्तमविश्वासं पञ्च शिक्षेच्च वायसात्।१८

भावार्थ—छिपकर मैथुन करना, धृष्टता (ढीठपन), समय-समय पर संग्रह करना, निरन्तर सावधान रहना और किसी पर विश्वास न करना—इन पाँच बातों को कौए से सीखना चाहिए।

बह्वाशी स्वल्पसन्तुष्टः सुनिद्रो लघुचेतनः ।

बह्वाशी स्वल्पसन्तुष्टः सुनिद्रो लघुचेतनः।
स्वामिभक्तश्च शूरश्चषडेते श्वानतो गुणाः।१९

भावार्थ—बहुत खाने की शक्ति रखना, न मिलने पर थोड़े से ही सन्तोष कर लेना, गाढ़ निद्रा में सोना, तनिक-सी आहट से ही जाग जाना, स्वामी-भक्ति और शूरवीरता—ये छह गुण कुत्ते से सीखने चाहिए।

सुश्रान्तोऽपि वहेद् भारं शीतोष्णं न च पश्यति। सन्तुष्टश्चरते नित्यं त्रीणि शिक्षेच्च गर्दभात् ॥२०॥

भावार्थ—अत्यन्त थक जाने पर भी बोझ ढोते जाना, सरदी-गरमी की परवाह न करना और सदा सन्तोष से जीवन बिताना—इन तीन गुणों को गधे से सीखना चाहिए।

य एतान् विंशतिगुणानाचरिष्यति मानवः।
कार्याऽवस्थासुसर्वासु अजेयः स भविष्यति ॥

भावार्थ—जो मनुष्य इन बीस गुणों को अपने जीवन में धारण करेगा, वह सब कार्यों और सब अवस्थाओं में विजयी होगा।

इति षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

ॐ अथ सप्तमोऽध्याय ॐ

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनं चाऽपमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत्।१

भावार्थ—बुद्धिमान् को चाहिए कि वह धन का नाश, मन का सन्ताप, घर के दोष, किसी द्वारा ठगा जाना और अपमानित होना इन बातों को प्रकाशित न करे, किसी के समक्ष न कहे।

धन-धान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणे च।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्।२।

भावार्थ—धन-धान्य—अन्न के क्रय-विक्रय में विद्या के संग्रह में आहार और व्यवहार में लज्जा न करने वाला मनुष्य सुखी होता है।

सन्तोषाऽमृत-तृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
न च तद् धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्।३।

भावार्थ—सन्तोषरूपी अमृत से तृप्त और शान्त चित्त-वाले मनुष्यों को जिस सुख की प्राप्ति होती है, इधर और उधर दौड़ने और भटकने वाले धन के लोभियों को वह सुख-शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्त्तव्योऽध्ययने तपदानयोः।४।

भावार्थ—अपनी पत्नी, भोजन और धन—इन तीन में सन्तोष करना चाहिए परन्तु अध्ययन, तप और दान—इन तीन में कभी सन्तोष नहीं करना चाहिए।

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दम्पत्योः स्वामिभृत्ययोः। अन्तरेण न गन्तव्यं हलस्य वृषभस्य च।५।

भावार्थ—दो ब्राह्मण, ब्राह्मण और अग्नि, पति और पत्नी, स्वामी और सेवक तथा हल और बैल—इनके बीच में होकर नहीं निकलना चाहिए।

पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरुं ब्राह्मणमेव च।
नैव गां न कुमारीं च न वृद्धं न शिशुं तथा॥

भावार्थ—अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, गौ, कुमारी, वृद्ध और शिशु—इन सबको पैर से कभी नहीं छूना चाहिए।

शकटं पञ्चहस्तेन दशहस्तेन वाजिनम्।
हस्ती शतहस्तेन देशत्यागेन दुर्जनम्।७।

भावार्थ—गाड़ी से पाँच हाथ दूर रहना चाहिए घोड़े से दस हाथ और हाथी से सौ हाथ दूर रहना चाहिए, दुर्जन से बचने के लिए तो देश का भी परित्याग कर देना चाहिए।

हस्ती अंकुशहस्तेन वाजी हस्तेन ताडयते।
शृङ्गी लगुडहस्तेन खड्गहस्तेन दुर्जनः।८।

भावार्थ—हाथी हाथ में पकड़ हुए अंकुश से वश में किया जाता है, घोड़ा चाबुक से पीटा जाता है, सींग वाला पशु डंडे से पीटा, और दुर्जन मनुष्य हाथ में ली हुई तलवार से मारा जाता है।

तुष्यन्ति भोजने विप्रा मयूरा घनगर्जिते।
साधवः परसम्पत्तौ खलः परविपत्तिषु।९।

भावार्थ-ब्राह्मण भरपेट भोजन मिलने पर, मोर बादलों के गर्जने पर, सज्जन दूसरों की सम्पत्ति में और दुष्ट दूसरों की विपत्ति में प्रसन्न होते हैं।

अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्जनम्।
आत्मतुल्यबलं शत्रुं विनयेन बलेन वा।१०।

भावार्थ- बलवान् शत्रु को उसके अनुकूल व्यवहार करके, दुष्ट शत्रु को उसके प्रतिकूल व्यवहार करके तथा अपने समान बलवाले शत्रु को विनय अथवा बल से जीतना या वश में करना चाहिए।

बाहुवीर्य बलं राज्ञो ब्राह्मणो ब्रह्मविद बली।
रूपयौवनमाधुर्य स्त्रीणां बलमुत्तमम् ॥११॥

भावार्थ-भुजबल राजा का बल होता है, ब्रह्मज्ञान और वेद का पांडित्य ब्राह्मण का बल होता है, सौन्दर्य यौवन और मधुर भाषण स्त्रियों का बल होता है।

नाऽत्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम्। छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥१२॥

भावार्थ—मनुष्य को अत्यन्त सरल और सीधे स्वभाव का नहीं बनना चाहिए। वन में जाकर देखो, वहाँ सीधे वृक्ष काट डाले जाते हैं और टेढ़े-मेढ़े वृक्ष खड़े रहते हैं, उन्हें कोई नहीं काटता।

यत्रोदकं तत्र वसन्ति हंसाः तथैव शुष्कं परिवर्जयन्ति। न हंसतुल्येन नरेण भाव्यं पुनस्त्यजन्ते पुनराश्रयन्ते ॥१३॥

भावार्थ—जहाँ जल होता है, हंस वही बसते हैं, जब जल सूख जाता है, तब वे उस स्थान को त्याग देते हैं परन्तु मनुष्य को हंस के समान बार-बार आने जाने वाला, स्वार्थी नहीं होना चाहिए।

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्।
तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाऽम्भसाम्॥१४

भावार्थ—कमाये हुए धन का व्यय करना (दान देना, भोग करना) ही उसकी रक्षा है, जैसे तालाब के भीतर भरे हुए जल को निकालते रहने से ही पानी शुद्ध और पवित्र रहता है।

यस्याऽर्थास्तस्य मित्राणि यस्याऽर्थास्तस्य बान्धवाः। यस्याऽर्थाःस पुमाँल्लोकेयस्याऽर्थाः स च जीवति ॥१५॥

भावार्थ—संसार में जिसके पास धन है, उसी के सब मित्र होते हैं, उसी के सब बन्धु-बान्धव होते हैं वही श्रेष्ठ पुरुष गिना जाता है और वही ठाट-बाट से जीता है।

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे। दानप्रसङ्गो मधुरा च वाणी देवाऽर्चनं ब्राह्मणतर्पणं च ॥१६॥

भावार्थ—इस संसार में स्वर्गवासियों के शरीर में चार चिन्ह होते हैं—१. दान देने का स्वभाव, २. मधुर-भाषण, ३. देवों का सत्कार ४. ब्राह्मणों को तृप्त करना।

अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम्। नीचप्रसङ्गः कुलहीनसेवा चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम् ॥१७॥

भावार्थ—नरक में रहने वालों के शरीर में निम्न चिन्ह होते हैं—१. अत्यन्त क्रोधी स्वभाव २. कटु भाषण, ३. दरिद्रता ४. कुत्ते की भाँति अपनों से वैर ५. नीचों की संगति और ६. कुलहीनों की सेवा।

गम्यते यदि मृगेन्द्र-मन्दिरं लभ्यते करिकपोल मौक्तिकम्। जम्बुकाऽऽलयगते च प्राप्यते

वत्स-पुच्छ-खर-चर्म-खण्डनम् ।१८।

भावार्थ – सिंह की गुफा में जाने पर हाथी के मस्तक का मोती प्राप्त होता है और गीदड़ के स्थान में जाने पर बछड़े की पूँछ तथा गधे के चमड़े का टुकड़ा मिलता है।

शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया बिना।
न गुह्यगोपने शक्तं न च दंशनिवारणे ।१९।

भावार्थ—विद्या के बिना मनुष्य जीवन कुत्ते की पूँछ के समान व्यर्थ है, क्योंकि कुत्ता अपनी पूँछ से न तो अपनी गुप्त इन्द्रियों को ढक सकता है और न ही मच्छर आदि को उड़ा सकता है। कुत्ते की भांति मूर्ख मनुष्य भी न तो छिपाने योग्य बात को छिपा सकता है और न शत्रुओं के आक्रमण को व्यर्थ कर सकता है।

वाचः शौचं च मनसः शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूते दया शौचं एतच्छौचं परार्थिनाम्।२०

भावार्थ—मन और वाणी की पवित्रता, इन्द्रियों का संयम प्राणिमात्र पर दया और अर्थ=धन और पवित्रता—यही परोपकारियों अथवा मुमुक्षओं की शुद्धि, पवित्रता मानी गई है।

पुष्पे गन्धं तिले तैलं काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम्।
इक्षौ गुडं तथा देहे पश्याऽऽत्मानं विवेकतः।२१

भावार्थ—जैसे पुष्प में गन्ध होती है तिलों में तेल, काष्ठ में अग्नि, दूध में घी और ईख में गुड़ होता है, वैसे ही शरीर में आत्मा=द्वारा आत्मा और परमात्मा विद्यमान हैं। बुद्धिमान् मनुष्य को विवेक के द्वारा आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहिए।

इति सप्तमोऽध्यायः

अथ अष्टमोऽध्याय:

अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमा: ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ।१

भावार्थ—अधम पुरुष धन की कामना करते हैं, मध्यम कोटि के पुरुष धन और मान दोनों चाहते हैं, उत्तम श्रेणी के पुरुष को केवल मान (आदर-सम्मान) की ही इच्छा रहती है, क्योंकि महापुरुषों के लिए सम्मान ही सबसे बड़ा धन है ।

इक्षुराप: पयो मूलं ताम्बूलं फलमौषधम् ।
भक्षयित्वाऽपि कर्तव्या: स्नानदानाऽऽदिका: क्रिया: ।२।

भावार्थ—गन्ना, जल, दूध, कन्द, पान, फल और औषधि—इनका सेवन करने पर भी स्नान दान (पूजा-पाठ आदि) धर्म कार्य किये जा सकते है ।

दीपो भक्षयते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते ।
यदन्नं भक्षयेन्नित्यं जायते तादृशी प्रजा ।३।

भावार्थ—दीपक अन्धकार खाता है और काजल उत्पन्न करता है, इसी प्रकार जो मनुष्य जैसा अन्न खाता है, उसके वैसी ही सन्तान उत्पन्न होती है ।

वित्तं देहि गुणान्वितेषु मतिमन्नान्यत्र देहि क्वचित् प्राप्तं वारिनिधेर्जलं घनमुखे माधु

र्थयुक्तं सदा। जीवान्स्थावरजंगमाँश्च सकलान् संजीव्य भूमण्डलम् भूयः पश्य तदेव कोटिगुणितं गच्छन्तमम्भोनिधिम् ॥४॥

भावार्थ—हे बुद्धिमन् ! गुणी पुरुषों को ही धन दो, गुण हीनों को नहीं देखो, समुद्र का खारी जल बादल के मुख में प्राप्त होकर मधुर हो जाता है और पृथ्वी पर जड़ और चेतन सभी जीवों को जीवन प्रदान करके वही जल करोड़ों गुना होकर समुद्र में चला जाता है।

चाण्डालानां सहस्रे च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
एकोहि यवनः प्रोक्तो न नीचो यवनात् परः॥

भावार्थ—तत्वदर्शी विद्वानों का कथन है कि एक यवन एक सहस्र चाण्डालों के समान होता है, यवन से बढ़कर नीच कोई नहीं होता।

तैलाऽभ्यंगे चिताधूमे मैथुने क्षौरकर्मणि। ता
वद्भवति चांडालो यावत्स्नानं न चाऽऽचरेत्॥

भावार्थ – शरीर में तेल की मालिश करने के पश्चात्, श्मशान में जाने पर, स्त्री के साथ मैथुन करने और हजामत बनवाने के पश्चात् मनुष्य जब तक स्नान नहीं कर लेता तब तक वह चाण्डाल होता है।

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बल-प्रदम्।
भोजने चामृतं वारि भोजनांते विषप्रदम् ॥७

भावार्थ–अपच में जल पीना औषध के समान है, भोजन पचने पर पानी पीना बलप्रद है, भोजन के मध्य में जल का सेवन अमृत के समान गुणकारी है और भोजन के अन्त में पानी पीना विष के समान हानिकारक है।

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाऽज्ञानतो नरः।
हतं निर्नायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः

भावार्थ—आचरण के बिना ज्ञान व्यर्थ है, अज्ञान से मनुष्य नष्ट हो जाता है। सेनापति के बिना सेना नष्ट होजाती है और पति से रहित स्त्रियाँ भी नष्ट हो जाती हैं।

वृद्धकाले मृता भार्या बन्धुहस्ते गतम् धनम्।
भोजनं च पराधीनं तिस्त्रः पुंसां विडम्बनाः॥

भावार्थ वृद्धावस्था में पत्नी का देहान्त हो जाना, अपने धन का भाई-बन्धुओं के हाथ में चला जाना और भोजन के लिए दूसरों का मुँह ताकना—ये तीनों बातें मनुष्यों के लिए मृत्यु के समान दुःख देनेवाली हैं।

नाग्निहोत्रं विना वेदा न च दानं बिना क्रिया। न भावेन बिना सिद्धिस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥१०॥

भावार्थ—अग्निहोत्र के बिना वेद पढ़ना व्यर्थ होता है, दान और दक्षिणा के बिना यज्ञादि क्रियाएँ निष्फल होती हैं, श्रद्धा और भक्ति के बिना किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं होती, अतः भावना ही सब सिद्धियों का मूल कारण है।

काष्ठपाषाणधातूनां कृत्वा भावेन सेवनम्।
श्रद्धया च तया सिद्धस्तस्य विष्णुः प्रसीदति॥

भावार्थ—लक्कड़, पत्थर और धातु की भावना तथा श्रद्धा से पूजा करने पर सिद्धि प्राप्त होती है और परमात्मा अपने उस भक्त पर प्रसन्न होता है।

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृन्मये ।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम् ।१२।

भावार्थ—परमेश्वर लक्कड़, पत्थर और मिट्टी से निर्मित मूर्तियों में नहीं है । परमेश्वर तो भाव में विद्यमान है, जहाँ भावना करें वहाँ ही परमेश्वर प्रकट हो जाता है ।

शान्तितुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परम् सुखम् । न तृष्णायाः परो व्याधिर्न न धर्मो दयापरः ।१३।

भावार्थ—शान्ति के समान कोई तप नहीं है, सन्तोष से बढ़कर कोई सुख नहीं है, तृष्णा से बढ़कर कोई रोग नहीं है और दया से बढ़कर कोई धर्म नहीं है ।

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी ।
विद्या कामदुघा धेनुः सन्तोषोनन्दनं वनं ।१४।

भावार्थ—क्रोध साक्षात् यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु है और सन्तोष नन्दन वन के समान है ।

गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम् ।
सिद्धिर्भूषयते विद्यां भोगो भूषयते धनं ।१५

भावार्थ—गुणों से रूप सुन्दर लगता है, शील कुल को चार चांद लगा देता है, सिद्धि से विद्या सुशोभित होती है और भोग धन को अलंकृत कर देता है ।

निर्गुणस्य हत रूप दुःशीलस्य हतम् कुलम् ।
असिद्धस्य हता विद्या अभोगेन हतं धनं ।१६

भावार्थ—गुणहीन मनुष्य की सुन्दरता व्यर्थ होती है, शीलरहित का कुल निन्दित होता है, अलौकिक शक्तियों से रहित, मोक्ष की ओर न ले-जाने वाले और बुद्धि से रहित विद्या व्यर्थ होती है तथा भोग के बिना धन व्यर्थ होता है।

शुचिर्भूमिगतं तोयं शुद्धा नारी पतिव्रता। शुचिः क्षेमकरो राजा सन्तोषी ब्राह्मणः शुचिः ॥१७॥

भावार्थ—भूमि के भीतर प्रविष्ट हुआ जल, पतिव्रता नारी, कल्याण करने वाला राजा और सन्तोषी ब्राह्मण—ये सब शुद्ध और पवित्र माने गये हैं।

असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः सन्तुष्टाश्च महीभृतः। सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जाश्च कुलाङ्गनाः ॥१८॥

भावार्थ—असन्तोषी ब्राह्मण, सन्तोषी राजा, लज्जा करने वाली वेश्यायें और लज्जाहीन कुल-स्त्रियाँ—ये नष्ट हो जाते हैं।

किं कुलेन विशालेन विद्याहीनेन देहिनाम्। दुष्कुलीनोऽपि विद्वाँश्च देवैरपि सुपूज्यते ॥१९॥

भावार्थ—विद्याहीन बड़े कुल से मनुष्य को क्या लाभ है? नीच कुल में उत्पन्न होने वाला विद्वान् भी देवों—विद्वानों के द्वारा अत्यन्त सम्मानित होता है।

विद्वान् प्रशस्यते लोके विद्वान् गच्छति गौरवम्। विद्यया लभ्यते सर्वं विद्या सर्वत्र पूज्यते ॥२०॥

भावार्थ—संसार में विद्वान् ही प्रशंसित होता है, विद्वान ही सर्वत्र आदर पाता है। विद्या से धन धान्य, मान-प्रतिष्ठा आदि सब-कुछ मिलता है। विद्या का सर्वत्र आदर होता है।

मांसभक्षैः सुरापानैर्मूर्खैश्चाक्षरवर्जितैः। पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराऽऽक्रान्ता च मेदिनी ॥२१॥

भावार्थ—मांस खाने वाले, मदिरा=शराब पीने वाले, मूर्ख और निरक्षर भट्टाचार्य मनुष्यरूपी पशुओं के भार से पृथिवी पीड़ित और दबी रहती है।

अन्नहीनो दहेद् राष्ट्रं मन्त्रहीनश्च ऋत्विजः। यजमानं दानहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥२२॥

भावार्थ—अन्नहीन यज्ञ राष्ट्र को, मन्त्रहीन यज्ञ ऋत्विजों (यज्ञ कराने वाले पुरोहितों, आचार्यों) को और दान-हीन यज्ञ यजमान को भस्म कर देता है। संसार में यज्ञ के समान कोई शत्रु नहीं है।

इति अष्टमोऽध्यायः

❁ अथ नवमोऽध्यायः ❁

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात् विषयान् विषवत् त्यज। क्षमाऽऽर्जवं दया शौचं सत्यं पीयूषवद् भज ॥१॥

भावार्थ— हे भाई ! यदि तुम्हें मुक्ति की कामना है तो विषयों को विष के समान समझकर त्याग दो और क्षमा (साहिष्णुता, धैर्य, तितिक्षा) आर्जव (सरलता, विनम्रता, ईमानदारी, निष्कपटता, उदारता) दया, पवित्रता और सत्य का अमृत के समान पान करो।

परस्परस्य मर्माणि ये भाषन्ते नराधमाः।
त एव विलयं यान्ति वल्मीकोदरसर्पवत्॥२

भावार्थ—जो नीच पुरुष एक-दूसरे के प्रति अन्तरात्मा को दुःख-दायज, मर्मों को आहत (पीड़ित) करने वाले वचन बोलते हैं, वे ऐसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे बाँबी में फँसकर साँप मारा जाता है।

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदण्डे नाऽकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य। विद्वान् धनाढ्यश्च नृपश्चिरायुः धातुःपुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत् ॥३॥

भावार्थ—ब्रह्मा ने सोने में सुगन्ध नहीं डाली, ईख में फल नहीं लगाये, चन्दन के वृक्ष में फूल नहीं लगाये, विद्वान को धनी और राजा को दीर्घजीवी नहीं बनाया, इससे ऐसा निश्चय होता है कि पूर्वकाल में कोई भी परमेश्वर को बुद्धि देने वाला नहीं था।

सर्वौषधीनाममृता प्रधाना सर्वेषु सौख्येष्वशनं प्रधानम्। सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानं सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥४॥

भावार्थ—सब औषधियों में गिलोय सब सुखों में भोजन सब ज्ञानेन्द्रियों में आँख और शरीर के सब अङ्गों में शिर सर्वश्रेष्ठ होता है।

दूतो न सञ्चरति खे न चलेच्च वार्ता
पूर्वं न जल्पितमिदं न च सङ्गमोऽस्ति ।
व्योम्नि स्थितं रविशशिग्रहणं प्रशस्तं
जानाति यो द्विजवरः स कथं न विद्वान् ॥५

भावार्थ—आकाश में कोई दूत नहीं जा सकता, न वहाँ किसी से कोई वार्तालाप हो सकता है, न पहले से किसी ने कुछ बता ही रखा है और न वहाँ किसी से संगम हो सकता है, फिर भी जो ब्राह्मण श्रेष्ठ आकाश में स्थित सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण को जान लेता है, वह विद्वान क्यों नहीं है ।

विद्यार्थी सेवकः पान्थः क्षुधाऽऽर्तो भय-कातरः । भाण्डारी प्रतीहारी च सप्त सुप्तान् प्रबोधयेत् ॥६॥

भावार्थ—विद्यार्थी, सेवक, पथिक, भूख से पीड़ित, भय से व्यग्र भण्डारी और द्वारपाल– ये सात यदि सोते हों तो इन्हें जगा देना चाहिए ।

अहिं नृपं च शार्दूलं किटिं च बालकं तथा ।
परश्वानं च मूर्खं च सप्त सुप्तान् न बोधयेत् ॥७॥

भावार्थ—सर्प, राजा, व्याघ्र, सूअर, बालक, दूसरे का कुत्ता और मूर्ख इन सात सोते हुओं को नहीं जगाना चाहिए।

अर्थाऽधीताश्च यैर्वेदास्तथा शूद्रान्न-भोजिनः । तेद्विजाः किं करिष्यन्ति निर्विषा इव पन्नगाः ॥८॥

भावार्थ—जिन ब्राह्मणों ने धन-प्राप्ति के लिए वेदों का अध्ययन किया है और जो शूद्रों—पतितों, शराबी कबाबी नीच मनुष्यों का अन्न खाते हैं, विषहीन ब्राह्मणों के समान वे ब्राह्मण क्या कर सकते हैं अर्थात् कुछ नहीं कर सकते। उन्हें संसार में कोई यश और गौरव नहीं मिल सकता।

यस्मिन् रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनाऽऽगमः। निग्रहोऽनुग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति ॥९॥

भावार्थ—जिसके क्रुद्ध होने पर कोई भय नहीं है और प्रसन्न होने पर धन-प्राप्ति की आशा नहीं है, जो न दंड दे सकता है और न कृपा ही कर सकता है, वह रुष्ट होकर क्या बिगाड़ेगा ?

निर्विषेणाऽपि सर्पेण कर्तव्या महती फणा। विषमस्तु न चाप्यस्तु घटाटोपो भयंकरः॥१०

भावार्थ—विषहीन साँप को भी अपना बड़ा फन फैलाना चाहिए; उसमें विष है या नहीं, इस बात को कौन जानता है, हाँ आडम्बर से दूसरे लोग भयभीत अवश्य हो जाते हैं।

प्रातर्द्यूतप्रसंगेन मध्याह्ने स्त्रीप्रसङ्गतः। रात्रौ चौर्यप्रसंगेन कालो गच्छत्यधीमताम् ॥११॥

भावार्थ—मूर्ख लोग प्रातःकाल की शुभवेला को जुआ खेलने में, मध्याह्न (दोपहर) को स्त्री-सहवास, भोग-विलास, आमोद-प्रमोद में और रात्रिकाल को चोरी करने आदि दुष्कर्मों में व्यतीत करते हैं।

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्तघृष्टचन्दनम् । स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं शक्रस्यापिश्रियं हरेत् ॥१२॥

भावार्थ—अपने हाथ से गुंथी हुई माला, अपने हाथ से घिसा हुआ चन्दन और अपने हाथ से लिखा हुआ स्तोत्र- ये काम इन्द्र की भी शोभा और लक्ष्मी को हर लेते हैं, अर्थात् माला गूँथने आदि में परिश्रम उस लाभ से भी अधिक होता है, जो इनके धारण करने से होता है।

इक्षुदण्डास्तिलाः क्षुद्राः कान्ता हेम च मेदिनी । चन्दनं दधि ताम्बूलं मर्दनं गुणवर्धनम् ॥१३॥

भावार्थ—ईख, तिल, गँवार स्त्री स्वर्ण, भूमि, चन्दन दही और पान—इन सबका जितना मर्दन किया जाए, उतने ही इनके गुण बढ़ते हैं।

दरिद्रता धीरतया विराजते कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते । कदन्नता चोष्णतया विराजते कुरूपता शीलतया विराजते ॥१४॥

भावार्थ—दरिद्रता धैर्य होने से कष्टदायक नहीं होती बुरा वस्त्र निर्मल रखने से सुन्दर लगता है। कुभोजन गरम-गरम होने से रुचिकर लगता है और कुरूप शील आदि गुणों से लोगों की आँखों में नहीं खटकता।

इति नवमोऽध्यायः ॥९॥

❀ अथ दशमोऽध्यायः ❀

धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः ।
विद्यारत्नेन यो हीनः स हीनः सर्ववस्तुषु
॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य धन से हीन है, वह दीन-हीन नहीं है, यदि वह विद्यारूपी धन से युक्त है तो वह निश्चय ही महाधनी है परन्तु जो मनुष्य विद्यारूपी रत्न से हीन है, वह सभी वस्तुओं से हीन है।

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
शास्त्रपूतं वदेद् वाक्यं मनः पूतं समाचरेत्
॥२॥

भावार्थ—मनुष्य आँख से अच्छी प्रकार देखकर पृथिवी पर पैर रखे, वस्त्र से छानकर जल पीये, शास्त्रों के अनुकूल हित, मित और कल्याणकारी वचन ही बोले तथा मन से सोच विचार कर श्रेष्ठ और शुभ व्यवहार करे।

सुखार्थी चेत्त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी च त्यजेत्
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः
सुखम् ॥३॥

भावार्थ—जिसे सुख की अभिलाषा हो उसे विद्या-प्राप्ति

की आशा छोड़ देनी चाहिए और जिसे विद्या-प्राप्ति की इच्छा हो उसे सुख की तिलाञ्जलि दे देनी चाहिए, क्योंकि सुख चाहने को विद्या की प्राप्ति नहीं हो सकती और विद्यार्थी को सुख नहीं मिल सकता।

कवयः किं न पश्यन्ति किं न कुर्वन्ति योषितः। मद्यपाः किं न जल्पन्ति किं न भक्षन्ति वायसाः ॥४॥

भावार्थ—कवि लोग क्या नहीं देखते ? स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं ? शराबी क्या नहीं बकते और कौए क्या नहीं खाते ?

रङ्कं करोति राजानं राजानं रङ्कमेव च। धनिनं निर्धनं चैव निर्धनं धनिनं विधिः॥५॥

भावार्थ—यह बात सत्य है कि परमेश्वर कङ्गाल को राजा, राजा कङ्गाल, धनी को निर्धन और निर्धन को धनी बना देता है।

लुब्धानां याचकः शत्रुर्मूर्खाणां बोधकः रिपुः। जारस्त्रीणां पतिः शत्रुश्चोराणां चन्द्रमा रिपुः ॥६॥

भावार्थ—माँगने वाला लोभियों का शत्रु होता है। मूर्खों का शत्रु उनको सदुपदेश देने वाला होता है पति व्यभिचारिणी स्त्रियों का शत्रु होता है और चोरों का शत्रु चन्द्रमा होता है।

येषां न विद्या न तपो न दानं न चाऽपिशीलं न गुणो न धर्मः। ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥७॥

भावार्थ—जिन मनुष्यों के पास न विद्या है, न तप है, न दान-शीलता है, न शील है, न गुण है, न धर्म है, वे पृथिवी पर भाररूप पशु ही हैं, जो मनुष्य के रूप में विचरा करते हैं।

अन्तःसारविहीनानामुपदेशो न जायते। मलयाऽचलसंसर्गात् न वेणुश्चन्दनायते ॥८॥

भावार्थ—भीतरी योग्यता से हीन, मलिन-हृदय वाले मनुष्यों पर उपदेश का कोई प्रभाव नहीं होता, जैसे मलयागिरि से आने वाली पवन के स्पर्श से भी बांस चन्दन नहीं होता।

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्। लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥९॥

भावार्थ—जो बुद्धिहीन है वेदादि शास्त्र भी उसका कोई कल्याण नहीं कर सकते, जैसे कि आँखों से विहीन अन्धे के लिए दर्पण व्यर्थ है। दर्पण अपनी चमक से उसकी आँखों का अन्धकार दूर नहीं कर सकता।

दुर्जनं सज्जनं कर्तुमुपायो न हि भूतले। अपानं शतधा धौतं न श्रेष्ठमिन्द्रियं भवेत् ॥१०॥

भावार्थ—ऐसा कोई भी उपाय नहीं है जिससे दुर्जन मनुष्य सज्जन बन सकते हों, क्योंकि गुदा को चाहे सकड़ों प्रकार से और सैकड़ों बार धोया जाए फिर भी वह मुख नहीं बन सकती।

आत्मद्वेषाद् भवेन्मृत्युः परद्वेषाद धनक्षयः। राजद्वेषाद् भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात् कुलक्षयः ॥११॥

भावार्थ—अपनी आत्मा से द्वेष करने से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, दूसरे से अथवा शत्रु से द्वेष करने से धन का नाश होता है, राजा से द्वेष करने से स्वयं का नाश होता है, और ब्राह्मण से द्वेष करने से कुल का नाश हो जाता है।

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं
द्रुमालयः पत्रफलाम्बुभोजनम्
तृणेषु शय्या शतजीर्णवल्कलं।
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥१२

भावार्थ—जिस वन में वृक्ष ही घर है पत्ते और फलों का भोजन तथा नदी-जल पीकर ही निर्वाह करना है, घास पर ही सोना है, और सौ स्थानों से फटे हुए वल्कल वस्त्रों को पहनना है, ऐसे बाघ और गजराजों से भरे वन में रहना अच्छा है, परन्तु अपने बन्धु-बान्धवों के मध्य में धनहीन जीवन अच्छा नहीं है।

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या
वेदाः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं
छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्॥१३

भावार्थ—ब्राह्मणरूपी वृक्ष की जड़ सन्ध्या है, वेद उसकी शाखाएँ हैं, धर्म कर्म उसके पत्ते हैं, अतः प्रयत्नपूर्वक जड़ की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि जड़ के कट जाने, नष्ट हो जाने पर शाखा और पत्ते भी नहीं रहते।

माता च कमलादेवी पिता देवो जनार्दनः।

बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्
॥१४॥

भावार्थ—लक्ष्मी जिसकी माता है, सर्वव्यापक आनन्द-प्रद परमेश्वर जिसका पिता है और परमेश्वर के भक्त जिसके बन्धु हैं ऐसे मनुष्य के लिए तीनों लोक अपने देश के समान ही हैं।

एकवृक्षसमारूढा नाना वर्णा विहङ्गमाः ॥
प्रभाते दिक्षु दशसु का तत्र परिदेवना ॥१५॥

भावार्थ—अनेक रंग और रूप वाले पक्षी सांयकाल एक वृक्ष पर आकर बैठते हैं और प्रातःकाल दसों दिशाओं में उड़ जाते हैं, ऐसे ही बन्धु-बान्धव एक परिवार में मिलते हैं और बिछुड़ जाते हैं, इस विषय में शोक—रोना-धोना क्या है?

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो बलम्।
बने सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः
॥१६॥

भावार्थ—जिसके पास बुद्धि है, उसी के पास बल है, बुद्धिहीन के पास बल कहाँ? देखो, वन में मद से उन्मत्त सिंह भी बुद्धिमान् खरगोश के द्वारा मारा गया।

का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते नो चेदर्भकजीवनाय जननीस्तन्यं कथं निर्मयेत्। इत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलं त्वत्पादाम्बुजसेवनेन सततं कालो मया नीयते ॥१७॥

भावार्थ—जब परमेश्वर संसार का पालन करने वाला

कहलाता है, तब मुझे अपनी जीविका की क्या चिन्ता है। यदि परमेश्वर संसार का पालक-पोषक नहीं होता तो बच्चे के जीवन के लिए उसकी माता के स्तनों में दूध कैसे बना देता? बारम्बार ऐसा विचार कर हे प्रजापते! त्रिभुवन स्वामिन्! मैं आपके चरण कमलों की सेवा में सदा अपना समय व्यतीत करता हूँ।

गीर्वाणवाणीषु विशिष्टबुद्धि-
स्तथापि भाषान्तरलोलुपोऽहम्।
यथा सुराणाममृते स्थितेऽपि
स्वर्गाङ्गनानामधरासवे रुचिः ॥१८॥

भावार्थ – चाणक्यजी कहते हैं—यद्यपि मैं संस्कृत भाषा में विशेष बुद्धि रखता हूँ तथा मैं दूसरी भाषाओं का भी लोभी हूँ—जैसे अमृत का पान करने के पश्चात् भी देवताओं की इच्छा स्वर्ग की स्त्रियों (अप्सराओं) के अधर-आसव का पान करने में रहती है।

अन्नाद्दशगुणं पिष्टं पिष्टाद्दशगुणं पयः।
पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसाद्दशगुणं घृतम् ॥१९॥

भावार्थ—चावल से दसगुनी शक्ति आटे में, आटे से दस-गुनी शक्ति दूध में, दूध से आठगुनी शक्ति मांस में और मांस से दसगुनी शक्ति तथा पुष्टि घी में होती है।

शाकेन रोगा वर्धन्ते पयसा वर्धते तनुः।
घृतेन वर्धते वीर्यं मांसान्मांसं प्रवर्धते ॥२०॥

भावार्थ—शाक से रोग बढ़ते हैं, दूध के सेवन से शरीर

की पुष्टि और वृद्धि होती है, घृत के सेवन से वीर्य बढ़ता है और मांस के सेवन से मांस बढ़ता है।

इति दशमोऽध्याय: ॥१०॥

❀ अथ एकादशोऽध्याय: ❀

**दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञता ।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वार: सहजा गुणा: ॥१॥**

भावार्थ—दानशीलता, मधुरभाषण, शूरत्व और पांडित्य—ये चारों गुण स्वाभाविक होते हैं, उन्हें अभ्यास से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

**आत्मवर्गं परित्यज्य परवर्गं समाश्रयेत् ।
स्वयमेव लयं याति यथा राजाऽन्यधर्मत: ॥२॥**

भावार्थ—जो मनुष्य अपने समुदाय को छोड़कर दूसरे के समुदाय का आश्रय लेता है, वह स्वयं ही ऐसे नष्ट होजाता है. जैसे कि दूसरे के धर्म का आश्रय लेने से राजा का नाश हो जाता है।

हस्ती स्थूलतनु: स चाङ्कुशवश: किं हस्ति मात्रोऽङ्कुशो दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तम किं दीपमात्रं तम: । वज्रेणापि हता: पतन्ति

गिरय: किं वज्रमात्रो गिरिस् तेजो यस्य
विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ॥

भावार्थ—हाथी का शरीर स्थूल होता है, फिर भी वह अंकुश के वश में रहता है तो क्या अंकुश हाथी से लम्बा-चौड़ा होता है। दीपक के जलाने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है, तो क्या अन्धकार दीपक के समान छोटा-सा होता है। वज्र के आघात से पर्वत चूर-चूर हो जाते हैं। तो क्या वज्र पर्वत के समान बड़ा होता है? ऐसी बात नहीं है, जिसका तेज चमकता है, वही बलवान् है, मोटेपन पर क्या विश्वास किया जा सकता है?

कलौ दशसहस्रेषु हरिस्त्यजति मेदिनाम्।
तदर्धं जाह्नवीतोयं तदर्धं ग्रामदेवता ॥४॥

भावार्थ—कलियुग में दस सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर विष्णु पृथिवी को त्याग देते हैं, पाँच हजार वर्ष व्यतीत होने पर गङ्गाजल पृथिवी को और ढाई वर्ष बीतने पर ग्राम देवता ग्राम या पृथिवी को त्याग देते हैं।

विमर्श—यह श्लोक निश्चय ही प्रक्षिप्त है, क्योंकि चाणक्य जैसा बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसी अनर्गल और बिना सिर-पैर की बात नहीं लिख सकता।

गृहाऽऽसक्तस्य नोविद्यानोदया मांसभोजिनः।
द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं स्त्रैणस्य न पवित्रता॥५

भावार्थ—घर में आसक्त विद्यार्थी को विद्या प्राप्त नहीं हो सकती। मांसाहारी में दया, धन-लोभी में सत्यता और व्यभिचारी में पवित्रता नहीं होती।

न दुर्जनः साधुदशामुपैति

बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः
आमूलसिक्तः पयसा घृतेन
न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ॥६॥

भावार्थ यह ध्रुव सत्य है कि अनेक प्रकार से समझाने और सिखाने पर भी दुष्ट मनुष्य सज्जन नहीं बन सकता, जैसे जड़सहित दूध और घी से सींचे जाने पर भी नीम का वृक्ष मीठा नहीं होता।

अन्तर्गतमलो दुष्टस्तीर्थस्नानशतैरपि। न
शुध्यति यथा भाण्डं सुराया दाहितं च सत्॥७

भावार्थ—जिसका अन्तःकरण अपवित्र है, ऐसा दुष्ट मनुष्य सैंकड़ों बार तीर्थ--स्नान करने पर भी शुद्ध नहीं होता, जैसे मदिरा का पात्र जलाया भी जाए तो भी शुद्ध नहीं होता।

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं
स तं सदा निन्दति नाऽत्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भजाता
मुक्ताः परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाः ॥८॥

भावार्थ--जो जिसके गुणों की श्रेष्ठता को नहीं जानता वह सदा उसकी निन्दा करता है'—यह तनिक भी आश्चर्य की बात नहीं है। देखो न, भीलनी हाथी के मस्तक से उत्पन्न होने वाले मोतियों को छोड़कर घुँघची की माला को धारण करती है।

यस्तु संवत्सरं पूर्णं नित्यं मौनेन भुञ्जति।
युगकोटिसहस्त्रं तु स्वर्गलोके महीयते ॥९॥

भावार्थ—जो मनुष्य एक वर्ष तक सदा मौन होकर भोजन करता है, वह निःसन्देह एक सहस्र करोड़ युगों तक स्वर्ग लोक में पूजित और सम्मानित होता है।

कामं क्रोधं तथा लोभं स्वादं शृंगार-कौतुके। अतिनिद्राऽतिसेवे च विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत् ॥१०॥

भावार्थ—विद्यार्थी को चाहिए कि वह काम, क्रोध, लोभ स्वाद, शृङ्गार, खेल-तमाशे, बहुत अधिक सोना और अत्यधिक सेवा करना—इन आठों बातों को त्याग दे।

अकृष्टफलमूलेन वनवासरतः सदा। कुरुतेऽहरहः श्राद्धमृषिर्विप्रः स उच्यते ॥११

भावार्थ – जो बिना जोति हुई भूमि से उत्पन्न फल और कन्दमूल खाकर अपना जीवन-यापन करता है, जो सदा वनवास में ही अनुराग रखता है और प्रतिदिन श्राद्ध करता है, ऐसा ब्राह्मण 'ऋषि' कहलाता है।

एकाहारेण सन्तुष्टः षट्कर्मनिरतः सदा। ऋतुकालाभिगामी च स विप्रो द्विज उच्यते॥

भावार्थ – एक समय के भोजन से ही सन्तुष्ट रहकर अध्ययन-अध्यापन आदि छह कर्मों में तत्पर रहने वाले और ऋतु काल में स्त्री के साथ सहवास करने वाले को 'द्विज' कहते हैं।

लौकिके कर्मणि रतः पशूनां परिपालकः। वाणिज्यकृषिकर्ता यः स विप्रो वैश्य उच्यते॥

भावार्थ—जो ब्राह्मण लौकिक कर्मों में संलग्न हो, पशु पालता हो, व्यापार और खेती करता हो, वह 'वैश्य' कहलाता है।

लाक्षादितैलनीलानां कुसुम्भमधुसर्पिषाम् ।
विक्रेता मद्यमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते॥१४

भावार्थ—जो ब्राह्मण लाखादि पदार्थ, तेल, नील, कुसुम्भ, मधु घी मद्य और मांस—इन पदार्थों का बेचने वाला हो, उसे 'शूद्र' कहते हैं।

परकार्यविहन्ता च दाम्भिकः स्वार्थसाधकः ।
छली द्वेषी मृदुः क्रूरो विप्रो मार्जार उच्यते॥

भावार्थ—जो दूसरे के कार्यों को बिगाड़ने वाला ढोंगी, अपने ही स्वार्थ-साधन में तत्पर, छली, द्वेषी, ऊपर से अत्यन्त नम्र और अन्दर से क्रूर (पैनी छुरी) हो, ऐसा ब्राह्मण 'बिलार' कहलाता है।

वापी-कूप-तडागानामाराम-सुर-वेश्मनाम् ।
उच्छेदने निराऽऽशङ्कः स विप्रो म्लेच्छ उच्यते॥

भावार्थ—जो ब्राह्मण बावड़ी, कुआँ, तालाब आराम (वाटिका) और देवालयों (मन्दिरों) के तोड़ने-फोड़ने में निडर हो, वह म्लेच्छ कहलाता है।

देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं परदाराऽभिमर्शनम् ।
निर्वाहः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते॥१७

भावार्थ—जो ब्राह्मण विद्वानों और गुरुओं के धन को चुरा लेता है, परनारियों के साथ सम्भोग करता है और सब प्राणियों में निर्वाह कर लेता है—सबके साथ जीवन-यापन कर लेता है, वह चाण्डाल कहलाता है।

देयं भोज्यधनं सदा सुकृतिभिर्नो सञ्चितव्यं
कदा श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि

कीर्तिः स्थिता। अस्माकं मधुदानभोगरहितं नष्टं चिरात्सञ्चितं निर्वाणादिति पाणिपादयुगले घर्षन्त्यहो मक्षिकाः ॥१८॥

इति एकादशोऽध्याय ॥११॥

भावार्थ—पुण्यात्माओं का भोग करने योग्य धन सदा दान देने के लिए ही होता है, वे कभी भी उसका सञ्चय नहीं करते, क्योंकि दान देने के कारण ही दानवीर कर्ण, महाराज बलि और विक्रमादित्य की कीर्ति आज भी अक्षुण्ण है। दान और भोग से रहित मधुमक्खियों का चिरकाल से सञ्चित किया हुआ मधु नष्ट हो गया। अहो! 'हमारा मधु नष्ट हो गया' ऐसा सोचकर मधुमक्खियाँ अपने दोनों हाथ और पैरों को मलती हैं अर्थात् पश्चाताप करती हैं।

❀ अथ द्वादशोऽध्यायः ❀

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधयः कान्ता प्रियलापिनी सुधनं सन्मित्रं स्वयोषिति रतिः स्वाऽऽज्ञापराः सेवकाः। आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे साधो सङ्गमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाऽऽश्रमः ॥१॥

भावार्थ—जहां सदा आनन्द की तरङ्गें उठती हों, पुत्र और पुत्रियाँ बुद्धिमान् और बुद्धिमती हों, पत्नी मधुरभाषिणी हो, परिश्रम और ईमानदारी से कमाया हुआ विपुल धन हो, आपत्ति और संकट में काम आने वाले उत्तम मित्र हों, अपनी पत्नी में प्रेम और अनुराग हो, नौकरचाकर स्वामी की आज्ञा पालन करने वाले हों, अतिथियों का आदर-सम्मान होता हो,

कल्याणकारी परमात्मा की उपासना होती हो, घर में प्रतिदिन स्वादिष्ट भोजन और मधुर पेयों की सुव्यवस्था हो तथा निरन्तर श्रेष्ठ पुरुषों का सत्सङ्ग होता रहे—ऐसा गृहस्थाश्रम वस्तुतः धन्य और प्रशंसनीय है।

आर्तेषु विप्रेषु दयान्वितश्च
यत् श्रद्धया स्वल्पमुपैति दानम्
अनन्तपारं समुपैति राजन्
यद्दीयते मन्न लभेद् द्विजेभ्यः ॥२॥

भावार्थ - दयालु और करुणापूर्ण मनुष्य दुःखी तथा पीड़ित ब्राह्मणों को जो थोड़ा-सा भी दान देता है, हे राजन्! ब्राह्मणों को जितना दान दिया जाता है, वह उतना ही नहीं मिलता, अपितु परमात्मा की कृपा से वह अनन्तगुणा होकर मिलता है।

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने प्रीतिः साधुजने स्मयः खलजने विद्वज्जने चार्जवम्। शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धृष्टता इत्थं ये पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेवलोकस्थितिः ॥३॥

भावार्थ—अपनों के प्रति सज्जनता, परायों पर दया, दुर्जनों के प्रति दुष्टता, सज्जनों के साथ प्रेम, दुष्टों के साथ हेकड़पना, विद्वानों के साथ सरलता, शत्रुओं के प्रति शूरता, बड़े लोगों के विषय में सहनशीलता, स्त्रियों के प्रति विश्वास—इस प्रकार से जो लोग इन कलाओं में कुशल होते हैं, ऐसे लोगों पर ही पृथिवी टिकी हुई है।

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थंगतौ अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुंगं शिरो रे रे जम्बुक मुञ्च मुञ्च सहसा नीचं सुनिन्द्यं वपुः ॥४॥

भावार्थ—जिसने हाथों से दान नहीं दिया, कानों से कभी वेदश्रवण नहीं किया, नेत्रों में सज्जन पुरुषों, साधु-महात्माओं के दर्शन नहीं किये, पाँवों से तीर्थ-गमन नहीं किया, जिसका पेट अन्याय से उपार्जित धन से भरा हुआ है, अभिमान के कारण जो मस्तक को ऊँचा करके चलता है—ऐसा जीवन व्यर्थ है, अतः हे सियाररूपी नीच मनुष्य ! तू ऐसे नीच और निन्दनीय शरीर को जितना शीघ्र हो सके, उतनी ही जल्दी छोड़ दे अर्थात् गुणरहित जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी है।

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्। वर्षा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥५॥

भावार्थ—यदि करील के झाड़ में पत्ते नहीं लगते तो इसमें बसन्त ऋतु का क्या दोष ? यदि उल्लू को दिन में दिखाई नहीं देता तो इसमें सूर्य का क्या अपराध ? यदि वर्षा की बूंदें चातक=पपीहा के मुख में नहीं पड़ती तो इससे बादलों का क्या दोष ! विधाता ने जो कुछ ललाट में लिख दिया है, उसे कौन मिटा सकता है ?

सत्सङ्गाद्भवति हि साधुता खलानां
साधूनां न हि सलसङ्गमात्खलत्वम् ।
आमोदं कुसुम भवं मृदेव धत्ते
भृद्गन्धं न हि कुसुमानि धारयन्ति ॥६॥

भावार्थ—यह सत्य है कि सज्जनों में दुष्टों की संगत से दुर्जनों में भी साधुता आ जाती है परन्तु सज्जनों में दुष्टों की संगति से असाधुता, दुष्टता नहीं आती। उदाहरण के रूप में मिट्टी फूल की गन्ध को ग्रहण कर लेती है परन्तु मिट्टी की गन्ध को फूल कभी धारण नहीं करते।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः ।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥७॥

भावार्थ—साधुओं, सज्जनों का दर्शनमात्र भी पुण्यप्रद है, क्योंकि साधु सन्त साक्षात् तीर्थरूपी ही होते हैं। तीर्थ तो समय आने पर ही फल देते हैं परन्तु साधुओं का दर्शन और संगति तो तुरन्त फल प्रदान करती है।

विप्राऽस्मिन्नगरे महान् कथय कस्तालद्रु-
माणां गणः को दाता रजको ददाति बसनं
प्रातर्गृहीत्वा निशि । को दक्षः परदारवित्त-
हरणे सर्वोऽपि दक्षो जनः कस्माज्जीवसि हे
सखे विषकृमिन्यायेन जीवाम्यहम् ॥८॥

भावार्थ—किसी पथिक ने नगर में पहुँचकर पूछा—हे विप्र! इस नगर में बड़ा कौन है? उसने उत्तर दिया—ताड़ के वृक्षों का समूह। दाता कौन है? धोबी—जो प्रातःकाल वस्त्र ले जाकर सायंकाल वापस लौटा देता है। चतुर कौन है?

दूसरे का धन और स्त्री का अपहरण करने में सभी चतुर हैं। ऐसी स्थिति में तुम जीते कैसे हो ? जैसे विष का कीड़ा विष में ही उत्पन्न होता है, और विष में ही जीता है, वैसे ही मैं भी जीता हूँ।

विप्रपादोदककर्दमानि
न वेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि ।
स्वाहा-स्वधाकार-विवर्जितानि
श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥९॥

भावार्थ—जिन घरों में ब्राह्मणों के पैरों को धुलाने वाले जल से कीचड़ नहीं हो जाता, जहाँ वेदादि शास्त्रों की ध्वनि नहीं गूंजती, वहाँ स्वाहा और स्वधाकार की ध्वनि नहीं होती वे घर श्मशान भूमि के समान है अर्थात धर्म-कर्म रहित घर मुर्दों का निवास स्थान है।

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया स्वसा। शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवा ॥१०॥

भावार्थ—किसी संसारी पुरुष ने किसी योगी को अत्यन्त आनन्द-मग्न देखकर पूछा—'संसार में जिसे उत्तम माता-पिता भाई-बहन, स्त्री और पुरुष मिलते हैं, वह उतना ही सुखी होता है। आप अत्यन्त आनन्दमग्न दिखाई देते हैं, अतः आपको भी उत्तम परिवार मिला होगा। कृपया अपने परिवार का परिचय दीजिए।" तब योगी ने अपने परिवार का परिचय देते हुए कहा—

"सत्य मेरी माता है, ज्ञान मेरा पिता है, धर्म मेरा भाई है, दया मेरी बहन है, शान्ति मेरी पत्नी है, और क्षमा—सहन

शीलता मेरा पुत्र है—ये छह ही मेरे बन्धु-बान्धव हैं, जिन्हें पाकर मैं अत्यन्त आनन्दित हूँ।"

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥

भावार्थ- शरीर नाशवान् है, धन-सम्पत्ति भी सदा रहने वाली नहीं है, मौत सदा सिरहाने खड़ी है, अत: धर्म का सञ्चय, धर्माचरण करना चाहिए।

आमन्त्रणोत्सवा विप्रा गावो नवतृणोत्सवाः।
पत्युत्साहयुता नार्यः अहं कृष्ण-रणोत्सवः ॥

भावार्थ - भोजन के लिए निमन्त्रण ब्राह्मणों के लिए उत्सव के समान है। चरने के लिए नई-नई घास की प्राप्ति होना गौओं के लिए उत्सव के समान है। पति का उत्साह से युक्त रहना ही स्त्रियों के लिए उत्सव के समान है और मेरे (चाणक्य के) लिए भयंकर मारकाट युद्ध ही उत्सव के समान है।

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पर स्त्री को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के ढेले समान और समस्त प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखता (समझता) है वस्तुत: वही ठीक-ठीक देखता है।

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयता चित्तेऽति
गम्भीरता। आचारे शुचिता गुणे रसिकता

शास्त्रेषु विज्ञानता रूपे सुन्दरता शिवे भजनता सत्स्वेव संदृश्यते ॥१४॥

भावार्थ—धर्म में तत्परता, मुख में मधुरता, दान देने में अत्यन्त उत्साह का होना, मित्रों के प्रति निष्कपटता, गुरु के प्रति नम्रता अन्तःकरण में समुद्र के समान गम्भीरता, आचार में पवित्रता, गुणों में रसिकता, शास्त्रों में विज्ञता, रूप में सुन्दरता और परमेश्वर की भक्ति—ये बातें सज्जनों में ही दृष्टिगोचर होती है।

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः सूर्यस्तीव्रकरः शशी क्षयकरः क्षारो हि वारां निधिः। कामो नष्टतनुर्बलिर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगौर्नैतांस्ते तुलयामि भो रघुपते कस्योपमा दीयते ॥१५॥

भावार्थ—कल्पवृक्ष काष्ठ है, सुमेरु पर्वत है, चिन्तामणि पत्थर है, सूर्य प्रचण्ड किरणों वाला है, चन्द्रमा क्षीण होनेवाला है, समुद्र खारी है, कामदेव अशरीरी है, बलि दैत्य—राक्षस है और कामधेनु पशु है अतः हे रघुपते ! इनमें से किसी के भी साथ आपकी तुलना नहीं हो सकती, फिर आपको किससे उपमा दी जाए ?

विनयं राजपुत्रेभ्यः पण्डितेभ्यः सुभाषितम् । अनृतं द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेत् कैतवम्॥

भावार्थ—राजपुत्रों से नम्रता एवं सहनशीलता, विद्वानों से श्रेष्ठ और प्रियवचन बोलना, जुआरियों से मिथ्या भाषण और स्त्रियों से छल करने की विद्या सीखनी चाहिए।

अनालोक्य व्ययं कर्ता ह्यनाथः कलहप्रियः ।
आतुरः सर्वक्षेत्रेषु नरः शीघ्रं विनश्यति ॥

भावार्थ—बिना सोचे-समझे अनाप-शनाप व्यय करने वाला, सहायक न होने पर भी लड़ाई-झगड़ा न करने वाला और सब वर्णों की स्त्रियों से सम्भोग करने के लिए उतावला मनुष्य शीघ्र नष्ट हो जाता है ।

नाहारं चिन्तयेत् प्राज्ञो धर्ममेकं हि चिन्तयेत् । आहारो हि मनुष्याणां जन्मना सह जायते ॥१८॥

भावार्थ—बुद्धिमान् मनुष्य को अपने आहार, भोजन के सम्बन्ध में सोच विचार नहीं करना चाहिए, उसे तो केवल धर्म का ही चिन्तन करना चाहिए, क्योंकि मनुष्य का आहार तो उसके जन्म के साथ ही उत्पन्न हो जाता है ।

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः ।
स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ॥

भावार्थ—क्रमशः पानी की एक-एक बूंद गिरने से घड़ा भर जाता है, इसी प्रकार धीरे-धीरे अभ्यास करने से सब विद्याओं की प्राप्ति हो जाती है. इसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा करके धर्म और धन का सञ्चय भी हो जाता है ।

वयसः परिणामेऽपि यः खलः खल एव सः ।
सुपक्वमपि माधुर्यं नोपयातीन्द्रवारुणम् ॥२०॥

भावार्थ—अवस्था के परिपक्व हो जाने पर भी जो दुष्ट है वह दुष्ट ही बना रहता है, जैसे अत्यन्त पक जाने पर भी इन्द्रायण के फल में मिठास नहीं आती, वह कड़वा ही बना रहता है । ॥इति द्वादशोऽध्यायः॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

मुहूर्तमपि जीवेत नरः शुक्लेन कर्मणा।
न कल्पमपि कष्टेन लोकद्वयविरोधिना॥१॥

भावार्थ—श्रेष्ठ कर्मों को करते हुए मनुष्य का एक मुहूर्तभर भी जीवित रहना अच्छा है परन्तु इहलोक और परलोक विरोधी दुष्ट कर्म करने वाले का तो कल्पभर जीना भी व्यर्थ है।

गते शोको न कर्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत्।
वर्तमानेन कालेन प्रवर्तन्ते विचक्षणाः ॥२॥

भावार्थ—बीती हुई बात का शोक नहीं करना चाहिए बुद्धिमान् लोग वर्तमान काल के अनुसार कार्य में जुट जाते हैं।

स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषाः पिता
ज्ञातयःस्वन्नपानाभ्यां वाक्यदानेन पण्डिताः॥

भावार्थ—विद्वान् लोग, सज्जन पुरुष और पिता ये स्वभाव से ही सन्तुष्ट होते हैं। बन्धु-बान्धव खान-पान से और पण्डितगण मधुर भाषण से प्रसन्न होते हैं।

अहो बत विचित्राणि चरितानि महाऽऽत्मनाम्। लक्ष्मी तृणाय मन्यन्ते तभ्दरेण नमन्ति च ॥४॥

भावार्थ—महात्माओं के चरित्र भी विचित्र ही होते हैं। वे धन को तृण=तिनके के समान तुच्छ मानते हैं परन्तु उसके भार से नम्र हो जाते हैं।

यस्य स्नेहो भयं तस्य स्नेहो दुःखस्य भाछ-

भम् । स्नेहमूलानि दुःखानि तानि त्यक्त्वा वसेत्सुखम् ॥५॥

भावार्थ—जिसे किसी के प्रति प्रेम होता है, उसे उसीसे भय भी होता है। प्रीति दुःखों का आधार है। स्नेह ही सारे दुःखों का मूल है. अतः स्नेह-बन्धनों को तोड़कर सुख पूर्वक रहना चाहिए।

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते तद्भविष्यो विनश्यति ॥

भावार्थ—जो संकट आने से पूर्व ही अपने बचाव का उपाय कर लेता है और जिसे ठीक समय पर आत्मरक्षा का उपाय सूझ जाता है—ये दोनों ही प्रकार के व्यक्ति सुख से अपनी वृद्धि करते हैं परन्तु 'जो भाग्य में लिखा है वही होगा' ऐसा सोचने वाला नष्ट हो जाता है।

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाःसमे समाः।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः॥७

भावार्थ—राजा के धार्मिक होने पर प्रजा धर्मपरायण, राजा के पापी होने पर प्रजा पापी तथा राजा के उदासीन होने पर प्रजा भी उदासीन होती है। प्रजा राजा का अनुसरण करती है, जैसा राजा होता है, वैसी ही प्रजा भी हो जाती है।

जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिमं धर्मवर्जितम्।
मृतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी न संशयः ॥८

भावार्थ—मैं धर्मरहित मनुष्य को मरे हुए के समान समझता हूँ। धार्मिक मनुष्य मरने के पश्चात भी जीवित रहता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, क्योंकि उसकी कीर्ति अमर रहती है, ऐसे धार्मिक मनुष्य के जीवन को ही सुजीवन समझना चाहिए।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥६।

भावार्थ—जिस मनुष्य के जीवन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पुरुषार्थों में एक भी नहीं है, उसका जन्म ऐसे ही व्यर्थ और निष्फल है जैसे बकरी के गले में लटकने वाले स्तन, जिनसे न तो दूध निकलता है और न गले की शोभा ही होती है।

दह्यमाना: सुतीव्रेण नीचा: पर-यशोऽग्निना
अशक्तास्तत्पदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते॥

भावार्थ—दुर्जन दूसरे की कीर्तिरूपी अग्नि से जलते हुए अब उस पद को प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं, तब वे उस गुणी की निन्दा करने में प्रवृत्त हो जाते हैं।

बन्धायविषयाऽऽसक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मन: ।
मनएव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो: ।।११

भावार्थ—मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण मनही है। विषयों में फँसा हुआ मन मनुष्य के बन्धन का कारण होता है और विषय-वासनाओं से शून्य मन मनुष्य के मोक्ष का कारण होता है।

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधय: ।।१२

भावार्थ—देह के अभिमान का नाश और परमात्मा निष्ठ हो जाने पर जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ-वहाँ ही समाधि समझनी चाहिए।

ईप्सितं मनस: सर्वं कस्य सम्पद्यते सुखम् ।
दैवाऽऽयत्त यत: सर्वंतस्मात्सन्तोषमाश्रयेत् ।।

भावार्थ—सभी मनोरथ किसी के भी पूर्ण नहीं होते क्योंकि सब कुछ दैव—भाग्य के अधीन है, अतः सन्तोष धारण करना चाहिए।

यथा धेनुसहस्त्रेषु वत्सो गच्छति मातरम्।
तथा यच्च कृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥१४

भावार्थ—जैसे सहस्रों गौओं से भी बछड़ा अपनी माता को पहचान कर उसी के पास जाता है, उसी प्रकार मनुष्य जो भी कर्म करता है, वह भी उसके पीछे पीछे चलता है अर्थात् मनुष्य को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

अनवस्थितकार्यस्य न जने न वने सुखम्।
जने दहति संसर्गो वने सङ्गविवर्जनम्॥१५

भावार्थ—अव्यवस्थित कर्म करने वाले को न तो जन समाज में सुख मिलता है और वन में। जनसमाज में मनुष्यों का संसर्ग उसे जलाता है और वन में एकांकी रहने के कारण वह दुःखी रहता है।

यथा खात्वा खनित्रेण भूतले वारि विन्दति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥१६

भावार्थ—जैसे भूमि खोदने वाला फावड़े आदि के द्वारा भूमि को खोदकर उसमें से जल प्राप्त कर लेता है, इसी प्रकार गुरुगत विद्या को सेवा करने वाला विद्यार्थी ही प्राप्त कर पाता है।

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी।
तथापि सुधयश्चाऽऽर्याः सुविचार्यैव कुर्वते ॥

भावार्थ—मनुष्यों को फल कर्मों के अनुसार मिलता है और बुद्धि भी कर्मों के अनुसार ही चलती है, फिर भी बिद्वान् और सज्जन लोग भली-भाँति सोच-विचार कर ही किसी कार्य को करते हैं।

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिवन्दति ।
श्वानयोनिशतं भुक्त्वा चाण्डालेष्वभि-
जायते ॥१८॥

भावार्थ—जो मनुष्य थोड़े-से भी ज्ञान देने वाले अथवा अद्वितीय तथा अविनाशी परमेश्वर का ज्ञान देने वाले गुरु का मान-सम्मान नहीं करता, उसे प्रणाम नहीं करता, वह सौ बार कुत्ते का जन्म भोग कर अन्त में चाण्डाल परिवारों में उत्पन्न होता है।

युगान्ते प्रचलते मेरुः कल्पान्ते सप्त सागराः।
साधवः प्रतिपन्नार्थान् न चलन्ति कदाचन ॥

भावार्थ—युग के अन्त में सुमेर पर्वत चलायमान हो जाता है, कल्प के अन्त में सातों समुद्र भी अपनी मर्यादा को छोड़ देते हैं परन्तु श्रेष्ठ पुरुष अपने हाथ में लिये हुए कार्य से अथवा अपनी की हुई प्रतिज्ञा से कभी भी विमुख नहीं होते।

इति त्रयोदशोऽध्यायः

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषि
तम् । मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधी
यते ॥१॥

भावार्थ—पृथिवी पर जल, अन्न और सूक्तियाँ—ये तीन ही रत्न हैं परन्तु मूर्ख लोग पत्थर के टुकड़ों को ही रत्न कहते हैं।

आत्माऽपराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम्
दारिद्र्यरोगदु:खानि बन्धनव्यसनानि च ॥

भावार्थ दरिद्रता, रोग, दु:ख, बन्धन और आपत्तियाँ ये सब मनुष्यों के अपने ही अधर्मरूपी वृक्ष के फल हैं।

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः ॥३॥

भावार्थ—धन, मित्र, स्त्री, भूसम्पत्ति, देश, राज्य–ये सब बार-बार मिल सकते हैं परन्तु मनुष्य-शरीर बार-बार नहीं मिलता।

बहूनां चैव सत्वानां समवायो रिपुञ्जयः।
वर्षधाराधरो मेघस्तृणैरपि निवार्यते ॥४॥

भावार्थ—संगठित मनुष्यों का सम्मिलित बल शत्रु के छक्के छुड़ाकर उसे पराजित कर सकता है, जैसे मूसलाधार वर्षा के वेग को क्षुद्र तिनके सगठित होकर (छप्पर के रूप में आकर) रोक देते हैं।

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ॥५॥

भावार्थ—जल में तेल, दुष्ट पुरुष में गुप्त रहस्य सत्पात्र को दिया गया दान और बुद्धिमान् को दिया गया शास्त्रज्ञान–ये थोड़े होने पर भी वस्तु की शक्ति से स्वयं विस्तार को प्राप्त हो जाते हैं।

धर्माऽऽख्याने श्मशाने च रोगिणां या मतिर्भवेत्। सा सर्वदैव तिष्ठेच्चेत् को न मुच्येत बन्धनात् ॥६॥

भावार्थ—धर्म-कथा सुनने के समय, श्मशान भूमि में और रोगी होने पर मनुष्य में जो बुद्धि उत्पन्न होती है, यदि वह बुद्धि सदा स्थिर रहे तो संसार-बन्धन से कौन नहीं छूट जाए ?

उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी । तादृशी यदि पूर्वं स्यात् कस्य न स्यान्महोदयः ॥७॥

भावार्थ—अशुभ कर्म करने के पश्चात् पछताने वाले मनुष्य की जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है, यदि वैसी ही बुद्धि पहले ही हो जाये तो किसको मोक्ष की प्राप्ति न हो जाए अर्थात् सबको हो जाए ।

दाने तपसि शौर्ये वा विज्ञाने विनये नये । विस्मयो न हि कर्तव्यो बहुरत्ना वसुन्धरा॥

भावार्थ—दानशीलता, तपस्या, शूरवीरता, विज्ञान, विनम्रता और नीतिमत्ता में सबसे बड़ा होने का अभिमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि पृथिवी पर एक-से-एक बढ़कर दानवीर, तपस्वी आदि विद्यमान हैं ।

दूरस्थोऽपि न दूरस्थोयो यस्यमनसिस्थितः । यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः॥

भावार्थ—जो जिसके हृदय में बसा हुआ है, वह दूर रहने पर भी दूर नहीं है और जो जिसके मन में समाया हुआ नहीं है, वह अत्यन्त निकट रहने पर भी दूर ही रहता है ।

यस्य चाप्रियमिच्छेत तस्य ब्रूयात् सदा प्रियम् । व्याधो मृगवधं कर्तुं गीतं गायति सुस्वरम् ॥१०॥

भावार्थ—जिसका अप्रिय करने की इच्छा हो उससे सदा मधुरभाषण करना चाहिए जैसे शिकारी हिरन का शिकार करने के लिए पहले मधुर स्वर से गीत गाता है (और जब गीत के स्वर पर मस्त होकर हिरन निकट आ जाता है, तब उसे पकड़ लेता है)।

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्था न फलप्रदाः। सेवितव्यं मध्यभागेन राजा वह्निर्गुरुः स्त्रियः ॥११॥

भावार्थ—राजा, अग्नि, गुरु और स्त्री—इनका सेवन मध्य-अवस्था से करना चाहिए, क्योंकि अत्यन्त समीप होने पर ये विनाश का कारण बन जाते हैं और दूर रहने पर फल नहीं देते।

अग्निरापः स्त्रियो मूर्खाः सर्पा राजकुलानि च। नित्यं यत्नेन सेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट् ॥१२॥

भावार्थ—अग्नि, जल, स्त्री, मूर्ख, साँप और राजपरिवार—इन सबका सदा सावधानी से सेवन करना चाहिए, क्योंकि तनिक-सी असावधानी होने से ये प्राणों को नष्ट कर डालते हैं।

स जीवति गुणा यस्य यस्य धर्मः स जीवति। गुणधर्मविहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजन ॥१३

भावार्थ—इस लोक में गुणियों का जीवन ही सुजीवन है अथवा धर्मात्मा का जीवन ही यथार्थ जीवन है। जो मनुष्य गुण और धर्म दोनों से रहित है उसका जीना तो व्यर्थ ही समझना चाहिए।

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा।
परापवादसस्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ।।१४

भावार्थ—हे मनुष्य ! यदि तू एक ही कर्म के द्वारा संसार को अपने वश में करना चाहता है तो दूसरों की निन्दा करने में लगी हुई अपनी वाणी को वश में कर अर्थात् किसी की निन्दा मत कर।

प्रस्तावसदृशं वाक्यं प्रभावसदृशं प्रियम्।
आत्मशक्तिसमं कोपं यो जानाति स पण्डितः ।।१५।।

भावार्थ—जो व्यक्ति प्रसङ्ग के अनुकूल बात करना जानता है, जो अपनी गरिमा के अनुकूल प्रियभाषण करना जानता है, और जो अपनी शक्ति के अनुसार क्रोध करना जानता है वह निःसन्देह पण्डित—विद्वान् है।

एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षितः।
कुणपः कामिनी मांसं योगिभिः कामिभिः श्वभिः ।।१६।।

भावार्थ—एक ही पदार्थ (स्त्री के शरीर) को तीन प्रकार के प्राणी तीन प्रकार से देखते हैं। योगी उसे अतिनिन्दित शव के रूप में देखता है। कामी उसे सुन्दर नारी के रूप में देखता है और कुत्ता उसे मांस-पिण्ड के रूप में देखता है। ठीक है, जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।

सुसिद्धमोषधं धर्मं गृहच्छिद्रं च मैथुनम्।
कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्न प्रकाशयेत् १७

भावार्थ—बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह विधि से सिद्ध की हुई औषधि, धर्माचरण, घर के दोष, स्त्री-सम्भोग,

कुभोजन और सुने हुए निन्दित वचनों को कभी प्रकाशित न करे।

तावन्मौनेन नीयन्ते कोकिलैश्चैव वासराः।
यावत्सर्वजनानन्ददायिनी वाक्प्रवर्तते ॥१८॥

भावार्थ—जब तक सब मनुष्यों को आनन्द देने वाली बसन्त ऋतु आरम्भ नहीं हो जाती जबतक कोयल मौन रहकर ही अपने दिनों को बिताती है अर्थात् ऋतु आने पर कोयल की कूक सुनाई देती है।

धर्मं धनं च धान्यं च गुरोर्वचनमौषधम्।
सुगृहीतं च कर्तव्यमन्यथा तु न जीवति ॥१९

भावार्थ—धर्म, धन, अन्न, गुरू के वचन और अनेक प्रकार की औषधियों का भली-भाँति संग्रह करना चाहिए। जो इनका संग्रह नहीं करता, ऐसा मनुष्य संसार में ठीक प्रकार जी नहीं सकता।

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ॥

भावार्थ - हे मनुष्य ! तू दुष्टों का संग छोड़कर सज्जनों का सत्सङ्ग कर। रात-दिन शुभ कर्म कर और संसार अनित्य है' इस बात को ध्यान में रखते हुए सदा प्रभु का चिन्तन किया कर।

इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपनैः ॥१

भावार्थ—जिसका चित्त प्राणिमात्र पर दया से द्रवीभूत हो जाता है उसे ज्ञान और मोक्ष-प्राप्ति की तथा जटा-धारण और भस्म-लेपन की क्या आवश्यकता है ?

एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वा चाऽनृणी भवेत् ॥२॥

भावार्थ—जो गुरू अपने शिष्य को अद्वितीय, विनाश-रहित ओ३म् वाक्य परमेश्वर का ठीक-ठीक बोध करा देता है, पृथिवी पर कोई ऐसा पदार्थ, धनादि नहीं है, जिसे गुरू को समर्पित करके शिष्य गुरु के ऋण से उऋण हो सके।

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
उपानान्मुखभङ्गो वा दूरतो वा विसर्जनम् ॥

भावार्थ—दुर्जन और कण्टक—इनसे बचने के दो ही उपाय हैं, या तो जूतों से उनका मुखमर्दन करना (उन्हें कुच-लना) अथवा उन्हें दूर से ही त्याग देना, उनसे बचकर निकल जाना।

कुचैलिनं दन्तमलोपसृष्टं
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च ।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥४॥

भावार्थ—मलिन (गन्दे) वस्त्र धारण करने वाले, मल-युक्त दांतों वालें, पेटू, कटुभाषी और सूर्योदय के पश्चात् तथा सूर्यास्त के समय सोनेवाले को श्री (शोभा' स्वास्थ्य, सौन्दर्य और ऐश्वर्य) त्याग देती हैं, चाहे वह साक्षात् विष्णु ही क्यों न हों।

त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं

दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च ।
तं चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ते
अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ॥५॥

भावार्थ—मित्र, स्त्री, सेवक, बन्धु—ये सब धनहीन मनुष्य को त्याग देते हैं। वही मनुष्य यदि पुनः धन-सम्पन्न बन जाये तो फिर उसी का आश्रय ग्रहण कर लेते हैं। वस्तुतः संसार में धन ही मनुष्य का बन्धु है।

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं तद् विनश्यति ॥

भावार्थ—अन्याय से कमाया हुआ धन दस वर्ष तक ठहरता है, ग्यारहवाँ वर्ष आरम्भ होने पर ब्याज और मूल सहित नष्ट हो जाता है।

अयुक्तं स्वामिनो युक्तं युक्तं नीचस्य दूषणम्।
अमृतं राहवे मृत्युर्विषं शङ्करभूषणम् ॥७॥

भावार्थ—समर्थ पुरुष का अनुचित कार्य भी उचित और क्षुद्र मनुष्य का उचित कार्य अनुचित हो जाता है। उदाहरण के रूप में राहु (दैत्य) के लिए अमृत भी मौत का कारण बन गया और शिव के लिए विष भी कण्ठ का आभूषण बन गया। विष-पान करके भी वे मरे नहीं अपितु नीलकण्ठ के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

तद्भोजनं यद् द्विजभुक्तशेषं
तत्सौहृदं यत्क्रियते परस्मिन् ।
सा प्राज्ञता या न करोति पापं
दम्भं विना यः क्रियते स धर्मः ॥८॥

भावार्थ—भोजन वह है जो ब्राह्मणों के भोजन कर लेने के पश्चात् बचता है अर्थात् ब्राह्मणों को खिलाने से बचा हुआ भोजन करना चाहिए। प्रेम, स्नेह वह है जो परायों पर किया जाये, अपनों से तो सभी स्नेह करते हैं। बुद्धिमत्ता यह है कि मनुष्य पापकर्मों को करने से बचा रहे और धर्म वह है जिसमें दम्भ, छल-कपट न हो।

मणिर्लुण्ठति पादाग्रे काचः शिरसि धार्यते।
क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः॥

भावार्थ— रत्न चाहे पैरों के आगे लुढ़कता रहे और कांच को सिर पर धारण कर लिया जाए परन्तु मोल लेने या बेचने के समय काँच, काँच ही रहता है और रत्न रत्न ही रहता है।

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्याः
अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥१०

भावार्थ—वेदादि शास्त्र अनन्त हैं और विद्यायें भी बहुत हैं। दूसरी ओर समय बहुत कम है और विघ्न बहुत हैं, अतः इन शास्त्रों में जो सार है, उसे ग्रहण करना चाहिए, जैसे हंस दूध और पानी के मिश्रण में से दूध को ग्रहण कर लेता है और पानी को छोड़ देता है।

दूरागतं पथि श्रान्तं वृथा च गृहमागतम्।
अनर्चयित्वा यो भुङ्क्ते स वै चाण्डाल उच्यते

भावार्थ—दूर से चलकर आने वाले, मार्ग चलने के श्रम से थके हुए, अकारण अथवा बिना स्वार्थ के घर पर आये हुए

अतिथि का आदर सत्कार किये बिना जो गृह-स्वामी भोजन कर लेता है, उसे 'चाण्डाल' कहते हैं।

पठन्ति चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः।
आत्मानं नैव जानन्ति दर्वी पाकरसं यथा॥

भावार्थ—जो ऋग्वेदादि चारों वेद और अनेक शास्त्रों का गहन अध्ययन करके भी शास्त्रों के प्रतिपाद्य और परमात्मा को नहीं जानते, आत्मज्ञान से शून्य हैं, उनका जीवन ठीक ऐसा ही है जैसे रसदार शाक में घूमने वाली कलछी को उसके स्वाद का ज्ञान नहीं होता।

धन्या द्विजमयी नौका विपरीता भवार्णवे।
तरन्त्यधोगताः सर्वे उपरिस्थाः पतन्त्यधः॥

भावार्थ—ब्राह्मणरूपी नौका धन्य है। संसार रूपी सागर में यह उलटी गति से चलती है। उलटी गति क्या है ? जो इस नाव के नीचे रहते है, वे सब तो तर जाते हैं, भवसागर से पार उतर जाते हैं और जो इस नाव में ऊपर चढ़ते हैं, उनका पतन हो जाता है, वे नीचे गिर जाते हैं। तात्पर्य यह है कि जो ब्राह्मणों के साथ नम्रता का व्यवहार करते हैं, वे तर जाते हैं और जो नम्र नहीं रहते, अभिमान में चूर रहकर उनका अपमान करते है उनका पतन हो जाता है।

अथममृतनिधानं नायकोऽप्यौषधीनां
अमृतमयशरीरः कान्तियुक्तोऽपि चन्द्रः।
भवति विगतरश्मिर्मण्डलं प्राप्य भानोः
परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति॥

भावार्थ—चन्द्रमा अमृत का भण्डार, औषधियों का अति

पति, अमृतमय शरीर वाला और कान्तियुक्त होने पर भी सूर्य के मण्डल में जाकर निस्तेज हो जाता है, उसकी सब चमक-दमक और शोभा लुप्त हो जाती है। ठीक ही है, दूसरे घर में जाकर कौन लघुता को प्राप्त नहीं होता अर्थात् सभी होते हैं।

अलिरयं नलिनीदलमध्यगः
कमलिनीमकरन्दमदालसः।
विधिवशात्परदेशमुपागतः
कुटलपुष्परसं बहु मन्यते ॥१५॥

भावार्थ—भौंरा जब कमलिनी के पत्तों के मध्य में था, तब कमलिनी के पराग के रस का पानकर उसके मद से अलसाया रहता था (मदमस्त बना रहता था) परन्तु अब भाग्यवश परदेश में आकर कुटक (करीर, इन्द्रजौ, कटसरैया) केपुष्प के रस को ही बहुत मानता है, जो रसहीन और गन्धशून्य है।

पीतःक्रुद्धेन तातश्चरणतलहतो वल्लभो येन रोषाद् आबाल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धार्यते वैरिणी मे। गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तं तस्मात्खिन्ना सदाहं द्विजकुलनिलयं नाथ युक्तं त्यजामि॥

भावार्थ—लक्ष्मी विष्णुजी से कहती हैं—अगस्त्य ऋषि ने क्रुद्ध होकर मेरे पिता समुद्र कोपी डाला, विप्रवर भृगुने रुष्ट होकर मेरे प्राणप्रिय पति के वक्षस्थल पर लात मारी, श्रेष्ठ ब्राह्मण बचपन से ही मेरी सौत सरस्वती को मुँह लगाए रहते हैं और प्रतिदिन उमापति शिव की पूजा के लिए मेरे घर (कमल-पुष्पों) को उजाड़ते रहते हैं,हे नाथ इन सब कारणों से

मैं ब्राह्मणों के घरों को सदा छोड़े रहती हूँ।

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि
प्रेमरज्जुदृढ़बन्धनमन्यत् ।
दारुभेदमनिपुणोऽपि षडंघ्रिर-
निष्क्रियो भवति पङ्कजकोशे ॥१७॥

भावार्थ—संसार में बन्धन तो बहुत हैं परन्तु प्रेम की रस्सी का बन्धन कुछ अनोखा ही होता है, क्योंकि काठ को छेदने में समर्थ भी भौंरा कमल के फूल में बन्द होकर निष्क्रिय हो जाता है। कमल की पंखुड़ियों को काटने में समर्थ होने पर भी वह कमल के साथ प्रीति होने के कारण 'इसकी पंखुड़ियाँ खराब हो जाएँगी'—ऐसा सोचकर उन्हें काटता नहीं है।

छिन्नोऽपि चन्दनतरुर्न जहाति गन्धं
वृद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम्
यन्त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः
क्षीणोऽपि न त्यजति शीलगुणान्कुलीनः ॥

भावार्थ—कट जाने पर भी चन्दन का वृक्ष अपनी सुगन्ध को नहीं छोड़ता, बूढ़ा होने पर भी गजराज अपनी काम क्रीड़ाओं को नहीं छोड़ता, कोल्हू में पेरने पर भी ईख अपनी मिठास को नहीं छोड़ती, इसी प्रकार कुलीन मनुष्य धनहीन होने पर भी अपनी सुशीलता को नहीं छोड़ता।

इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५

❀

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽहिनोपार्जितः। नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥१॥

भावार्थ– जिस मनुष्य ने न तो संसार जाल को काटने के लिए योगाभ्यास द्वारा परमेश्वर के प्रातव्य स्वरूप का ही ध्यान किया, न स्वर्गद्वार के कपाटों को खोलने में समर्थ धन का ही संग्रह किया और न ही स्वप्न में भी नारी के बड़े-बड़े स्तनों और जङ्घाओं का आलिंगन ही किया—ऐसे लोग माता के यौवनरूपी वृक्ष को काटने वाले कुल्हाड़े के समान ही हैं।

जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः ॥

भावार्थ—कुलटाएं (वेश्याएं) बातचीत तो किसी के साथ करती हैं, विलासपूर्वक देखती किसी और को हैं और हृदय में किसी अन्य पुरुष का ही चिन्तन करती हैं। ठीक ही है, वेश्याओं की प्रीति किसी एक के साथ नहीं होती।

यो मोहान्मन्यते मूढो रक्तेयं मयि कामिनी।
स तस्य वशगो भूत्वा नृत्येत् क्रीडा-शकुन्तवत् ॥३॥

भावार्थ—जो मूर्ख अज्ञान-अविवेक के कारण ऐसा समझता है कि यह मनोहर और सुन्दर स्त्री (वेश्या) मुझसे प्रेम

करती है, ऐसा मनुष्य उसके वशीभूत होकर कठपुतली की भाँति उसके इशारों पर नाचा करता है।

कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितो विषयिणः कस्या-पदोऽस्तंगताः स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः। कः कालस्य न गोचरत्वमगमत्कोऽर्थी गतो गौरवं को वा दुर्जनवागुरासु पतितः क्षेमेण यातः पति ॥४

भावार्थ—ऐश्वर्य पाकर अभिमानी कौन नहीं हुआ ? किस विषयलोलुप की विपत्ति नष्ट हुई ? ससार में किसके मन को स्त्रियों ने खण्डित नहीं किया ? यथार्थ में राजा का निरन्तर प्रिय कौन हुआ ? काल के वश में कौन नहीं हुआ ? किस याचक ने गौरव पाया ? दुर्जन के फंदे में फँसकर संसार के पथ में कुशलता से कौन गया ?

न निर्मितः केन न दृष्टपूर्वः
न श्रूयते हेममयः कुरङ्गः।
तथाऽपि तृष्णा रघुनन्दनस्य
विनाशकाले विपरीत बुद्धिः॥५॥

भावार्थ—स्वर्णमृग की रचना न तो पहले किसी ने की न किसी ने स्वर्णमृग देखा ही और न कभी उसके सम्बन्ध में सुना ही गया फिर भी श्रीराम स्वर्णमृग को पकड़ने के लिए आतुर हो गये। ठीक ही है, जब विनाश का समय आता है, तब मनुष्य की बुद्धि उलटी हो जाती है।

गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थितः।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते॥

भावार्थ—मनुष्य अपने श्रेष्ठ गुणों, सदाचार, शील और चरित्र द्वारा उत्तमता को प्राप्त होता है, ऊंचे आसन पर बैठने से नहीं। क्या राजभवन की चोटी पर बैठने से कौआ गरुड़ बन सकता है? कदापि नहीं।

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि सम्पदः।
पूर्णेन्दु किं तथा वन्द्यो निष्कलङ्को यथा कृशः ॥७॥

भावार्थ—सभी स्थानों पर मनुष्यों के गुणों का आदर होता है, विपुल सम्पत्ति होने पर भी गुणहीन मनुष्य का सम्मान नहीं होता। अत्यन्त क्षीण प्रकाश वाला परन्तु निष्कलङ्क (धब्बों से रहित) द्वितीया का चन्द्रमा जैसा पूजित होता है क्या पूर्णचन्द्र भी वैसा ही वन्दित होता है? कदापि नहीं।

पर-प्रोक्तगुणों यस्तु निर्गुणोऽपिगुणी भवेत्।
इन्द्रोऽपिलघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः॥

भावार्थ—जिस मनुष्य के गुणों की प्रशंसा अन्य लोग करें वह गुणहीन होने पर भी गुणी बन जाता है परन्तु इन्द्र भी अपने मुख से अपनी प्रशंसा करे तो वह क्षुद्रता=हल्केपन, छोटेपन को प्राप्त हो जाता है।

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणा यान्ति मनोज्ञताम्।
सुतरां रत्नमाभाति चामीकरनियोजितम्॥

भावार्थ—गुण विवेकी मनुष्य को पाकर विकसित हो उठते हैं, जैसे सोने में जड़ा हुआ रत्न अत्यन्त सुन्दर दिखाई देने लगता है।

गुणैः सर्वज्ञतुल्योऽपि सीदत्येको निराश्रयः।
अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥१०॥

भावार्थ—गुणों में परमात्मा के समान होने पर भी अकेला मनुष्य दुःख उठाता है। जैसे अत्यन्त मूल्यवान हीरा भी सोने में जड़े जाने की अपेक्षा करता है, उसी प्रकार मनुष्य भी कोई सहारा चाहता है।

अतिक्लेशेन य चार्था धर्मस्यातिक्रमेण तु।
शत्रूणां प्रणिपातेन ते ह्यर्था मा भवन्तु मे॥

भावार्थ—जो धन दूसरों को हानि तथा पीड़ा पहुँचाकर धर्म का उल्लंघन करके और शत्रु के सामने झुकने से प्राप्त होता है, ऐसा धन मुझे नहीं चाहिए।

किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला।
या तु वेश्येव सामान्यापथिकैरपि भुज्यते॥

भावार्थ—उस धन से क्या लाभ जो कुलवधू की भाँति केवल एक मनुष्य के उपभोग के लिए हो। धन-सम्पत्ति तो वही श्रेष्ठ है, जो वेश्या की भाँति पथिकों द्वारा भी भोगी जाती हो।

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु चाहारकर्मसु।
अतृप्ताः प्राणिनः सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च॥१३॥

भावार्थ—धन, ऐहिक जीवन, स्त्री सेवन और विविध प्रकार के अन्न-सेवन के विषय में सभी प्राणी अतृप्त रहकर ही चले गए, जाएँगे और जाते हैं।

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रियाः।
न क्षीयते पात्रदानमभयं सर्वदेहिनाम्॥१४॥

भावार्थ—अन्न, जल, वस्त्र, भूमिदान आदि सब प्रकार के दान तथा ब्रह्मयज्ञ और बलिवैश्वदेवयज्ञ आदि सभी कर्म नष्ट

हो जाते हैं परन्तु सुपात्र को दिया गया दान और प्राणिमात्र को दिया गया अभयदान कभी नष्ट नहीं होता।

तृणं लघु तृणात्तूलं तूलादपि च याचकः।
वायुना किं न नीतोऽसौ मामयं याचयिष्यति ॥१५॥

भावार्थ—संसार में तिनका अत्यन्त हल्का होता है, तिनके से भी रूई अधिक हल्की होती है और रूई से भी याचक अधिक हल्का होता है। प्रश्न होता है कि यदि याचक रुई से भी हल्का होता है तो वायु उसे उड़ाकर क्यों नहीं ले जाता? उत्तर है कि यह याचक मुझसे भी कुछ माँग न बैठे, इस भय से वायु उसे उड़ाकर नहीं ले जाता।

वरं प्राणपरित्यागो मानभङ्गेन जीवनात्।
प्राणत्यागे क्षणं दुःखं मानभङ्गे दिने दिने॥

भावार्थ—अपमानित होकर जीने की अपेक्षा मर जाना अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि मरने के समय तो क्षणभर के लिए कष्ट होता है परन्तु अपमानित होने पर तो प्रतिदिन ही दुःख होता है।

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता॥

भावार्थ—मधुरभाषण से, मीठी बोली से सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं, अतः प्रियवचन ही बोलने चाहिए, वाणी में अमृतरुपी मधुरता घोलनी चाहिए, वचनों में भी दरिद्रता कैसी?

संसारकटुवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे।
सुभाषितं च सुस्वादु संगतिः सुजने जने॥

भावार्थ—संसाररूपी कड़वे वृक्ष के अमृत के समान मधुर दो ही फल हैं—रसीला प्रिय वचन और सज्जनों की संगति।

जन्म-जन्मन्यभ्यस्तं यद् दानमध्ययनं तपः।
तेनैवाऽभ्यासयोगेन तदेवाभ्यस्यते पुनः ॥१९

भावार्थ—जन्म-जन्मान्तरों में मनुष्य ने जिस दान, अध्ययन और तप का अभ्यास किया है, उसी अभ्यास के योग से वह पुनः पुनः उनका अभ्यास करता है।

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम्।
उत्पन्नेषु चकार्येषु न सा विद्या न तद्धनम् ॥

भावार्थ—जो विद्या पुस्तकों में लिखी हुई है और जो धन दूसरों के हाथों में है, काम पड़ने पर न तो वह विद्या काम आती है, न ही धन।

इति षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

पुस्तकप्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ।
सभामध्ये न शोभन्ते जारगर्भा इवस्त्रियः॥१

भावार्थ—जिन्होंने गुरुमुख से विद्या का अध्ययन नहीं किया अपितु पुस्तकों के आधार पर ही पढ़ लिया, वे लोग सभा के मध्य में ऐसे ही सुशोभित नहीं होते जैसे व्यभिचार-कर्म से गर्भधारण करनेवाली नारी जनसमाज में सुशोभित नहीं होती।

कृते प्रतिकृतं कुर्याद् हिंसने प्रतिहिंसनम्।
तत्र दोषो न पतति दुष्टे दुष्टं समाचरेत् ॥

भावार्थ—जैसे के साथ तैसा व्यवहार करना चाहिए।

उपकारी के प्रति प्रत्युपकार और हिंसक के प्रति हिंसा का व्यवहार करना चाहिए। ऐसा करने से कोई दोष नहीं लगता, क्योंकि दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार ही उचित होता है।

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम्।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥

भावार्थ—जो अत्यन्त दूर है, जिसकी आराधना करना अत्यन्त कठिन है, जो अत्यन्त ऊंचाई पर वर्तमान है, वह सब तप के द्वारा सिद्ध हो सकता है, क्योंकि अत्यन्त प्रबल होता है।

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्। सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः सद्विद्या किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना॥४॥

भावार्थ—यदि लोभ है तो दुर्गुण की क्या आवश्यकता है? यदि चुगलखोरी का स्वभाव है तो और पातकों का क्या काम? यदि जीवन में सत्य है तो तप करने की क्या आवश्यकता है? यदि तन शुद्ध और पवित्र है तो तीर्थों में भटकने का क्या लाभ? यदि प्रेम है तो और गुणों की क्या आवश्यकता? यदि यश है तो आभूषणों की क्या आवश्यकता है? यदि श्रेष्ठ विद्या है तो धन की क्या आवश्यकता है? यदि अपयश है तो मृत्यु से क्या?

पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य सहोदरा।
शङ्खो भिक्षाटनं कुर्यान्नऽदत्तमुपतिष्ठते॥५

भावार्थ—समुद्र जिसका पिता है, लक्ष्मी जिसकी बहिन

है, चन्द्रमा के समान चमकता हुआ ऐसा शंख भी यदि भीख मांगता फिरे तो समझ लेना चाहिए कि बिना दान दिये धन नहीं मिलता।

अशक्तस्तु भवेत्साधुर्ब्रह्मचारी च निर्धनः।
व्याधिष्ठो देवभक्तश्च वृद्धा नारी पतिव्रता॥

भावार्थ—दुर्बल व्यक्ति सज्जन बन जाता है, निर्धन ब्रह्मचारी बन जाता है, रोगग्रस्त प्रभु-भक्त बन जाता है और वृद्धा-स्त्री पतिव्रता बन जाती है।

नाऽन्नोदकसमं दानं न तिथिर्द्वादशी समा।
न गायत्र्याः परो मन्त्रो न मातुः परं दैवतम्॥

भावार्थ—अन्न और जल के समान कोई दान नहीं है, द्वादशी के समान कोई तिथि नहीं गायत्री से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है और माता से बढ़कर कोई देवता नहीं है।

तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकायास्तु मस्तके।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वांगे दुर्जनेविषम्॥८

भावार्थ—सांप के दांतों में विष होता है, मक्खी के सिर होता है, बिच्छू की पूँछ में विष होता है—इन सभी के एक-एक अंग में विष होता है परन्तु दुर्जन के सभी अंगों में विष भरा रहता है।

पत्युराज्ञां विना नारी उपोष्य व्रतचारिणी।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत्॥

भावार्थ—जो स्त्री पति की आज्ञा के बिना भूखों मरने-वाला व्रत रखती है, वह पति की आयु को घटाती है और स्वयं महान् कष्ट भोगती है।

न दानैः शुध्यते नारी नोपवासशतैरपि।

न तीर्थसेवया तद्वद् भर्तुः पादोदकैर्यथा ॥१०

भावार्थ—स्त्री नाना प्रकार के दान करने से, सैकड़ों प्रकार के उपवास करने से और तीर्थों में स्नान से वैसी शुद्ध और पवित्र नहीं होती जैसी स्वामी का चरणोदक लेने से, स्वामी की चरण सेवा से।

दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन
स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन।
मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन
ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मण्डनेन ॥११॥

भावार्थ—हाथों की शोभा दान से होती है, कगन पहनने से नहीं, शरीर की शुद्धि स्नान करने से होती है, चन्दन का लेप करने से नहीं, मानसिक तृप्ति आदर-सम्मान से होती है, भोजन से नहीं, ज्ञान से मुक्ति होती है, तिलक, छापे लगाकर श्रृंगार करने से नहीं।

नापितस्य गृहे क्षौरं पाषाणे गन्धलेपनम्।
आत्मरूपं जले पश्यन् शक्रस्यापि श्रियं हरेत्॥

भावार्थ—नाई के घर पर जाकर हजामत बनवाना, पत्थर पर चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का लेपन और जल में अपना प्रतिबिम्ब=परछाई देखना—ये कार्य महान् ऐश्वर्यशाली की भी शोभा को नष्ट कर देते हैं।

सद्यः प्रज्ञाहरा तुण्डी सद्यः प्रज्ञाकरी वचा।
सद्यः शक्तिहरा नारी सद्यः शक्तिकरं पयः॥

भावार्थ—कुन्दरु शीघ्र बुद्धिनाशक है, वच शीघ्र बुद्धिवर्धक है, नारी तत्काल शक्तिहरण करने वाली है और दूध तत्काल शक्तिदायक है।

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम् ।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे ॥

भावार्थ—जिन सज्जनों के हृदय में परोपकार की भावना जाग्रत् रहती है, उनकी आपत्तियाँ दूर हो जाती है और पद-पद पर उन्हें सम्पत्ति प्राप्त होती है।

यदि रामा यदि च रमा यद्यपि तनयो विनतगुणोपेतः । यदि तनये तनयोत्पत्तिः सुरवनगरे किमाधिक्यम् ॥१५॥

भावार्थ—यदि घर में सुन्दरी, सती-साध्वी, मधुर-भाषिणी पत्नी है, विपुल धन-सम्पत्ति है, पुत्र विनयशील है, पुत्र के भी पुत्र की उत्पत्ति हो गई, तो स्वर्गलोग में इससे अधिक क्या है ? (कुछ भी तो नहीं।)

आहारनिद्राभयमैथुनानि समानि चैतानि नृणां पशूनाम् । ज्ञानं नराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥१६

भावार्थ—खाना, सोना, डरना और संतान पैदा करना मनुष्यों और पशुओं में ये चार बातें समान होती हैं। पशुओं की अपेक्षा मनुष्य में ज्ञान अधिक और विशेष होता है। ज्ञान से रहित मनुष्य पशुओं के समान ही हैं।

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैर ।
दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्धया ।
तस्यव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा
भृङ्गाः पुनर्बिकचपद्मवने वसन्ति॥१७

भावार्थ—यदि मदान्ध बुद्धिवाले मदमस्त गजराज (हाथी) ने मद की कामना से आये हुए भौरों को अपने कानों

को फड़-फड़ाकर उड़ा दिया तो इससे उसी के गण्ड-स्थलों की शोभा नष्ट हुई। भौंरे तो पुनः खिले हुए कमलवन रहने लगते हैं।

राजा वेश्या यमो ह्यग्निस्तस्करो बालयाचकौ।
परदुःखं न जानन्ति अष्टमो ग्रामकण्टकः ॥

भावार्थ—राजा, वेश्या, यमराज, अग्नि, चोर, बालक, याचक और ग्रामकण्टक – ये आठ दूसरे के दुःख को नहीं जानते।

अधः पश्यसि किं बाले पतितं तव किं भुवि।
रे रे मूर्ख न जानासि गतं तारुण्यमौक्तिकम्॥

भावार्थ – किसी मनचले युवक ने किसी वृद्धा से पूछा—हे बाले ! तू क्या खोजती फिर रही, पृथिवी पर तेरी कौन-सी वस्तु खो गई है ? वृद्धा ने कहा— अरे मूर्ख ! तुझे पता नहीं है कि मेरा यौवनरूपी मोती खो गया है, मैं उसी को खोजती फिर रही हूँ।

व्यालाश्रयाऽपि विफलापि सकण्टकाऽपि।
वक्राऽपि पङ्किल-भवाऽपि दुरासदाऽपि।
गन्धेन बन्धुरसि केतकि सर्वजन्तोर
एको गुणः खलु निहन्ति समस्तदोषान् ॥

भावार्थ—हे केतकि ! यद्यपि तू साँपों का घर है, फल से रहित है, काँटों से युक्त है, टेढ़ी भी है, उत्पन्न भी कीचड़ में होती है, प्राप्त भी कठिनता से होती है—इतना सब कुछ होने पर भी तू केवल अपने गन्ध गुण में कारण सब प्राणियों के मन को मोह रही है। इससे निश्चय होता है कि एक भी गुण सारे दोषों को दूर कर देता है।

इति सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

आर्य जगत की श्रेष्ठ उपयोगी पुस्तकें

घर बैठे वी० पी० द्वारा मँगाइये

१—महर्षि दयानन्द	५-००
२—महावीर हनुमान	५-००
३—आर्य भजनावली	५-००
४—आर्य गीताञ्जलि	५-००
५—दृष्टान्त महासागर	५-००
६—दो सहेलियों की वार्ता	६-००
७—संगीत रत्नावली	[illegible]-००
८—मानव धर्म प्रकाश	५-००
९—चाणक्य नीति	६-००
१०—नित्य कर्म विधी	५-००
११—राम रावण तुलसी मुकदमा	६-००
१२—आदर्श गीताञ्जलि	[illegible]-००
१३—तेजसिंह शतक सागर	[illegible]-००
१४—वैदिक बम्ब (भजन संग्रह)	[illegible]-००
१५—अद्भुत रामायण	[illegible]-००
१६—आदर्श महाभारत	[illegible]-००
१७—आदर्श भगवत गीता	[illegible]-००
१८—बाल धर्म शिक्षा	[illegible]-००
१९—सत्यनारायण व्रत कथा	[illegible]-५०
२०—महिला गीत मंजरी	२-५०
२१—वर्तमान युग (ले० श्रीचन्द आर्य)	[illegible]-००
२२—कड़क संस्कार गीताञ्जलि	३-००
२३—संगीत सुधारस	१-५०
२४—भजनोपदेशक रत्नमाला	१-५००
२५—महाराणा प्रताप	८-००

पुस्तकें मँगाने का पता—

आर्य साहित्य केन्द्र

1335, हालन गंज, मथुरा – 281 001

मुद्रक—गिरीश प्रिन्टिंग प्रेस, हालन गंज, मथुरा.